ओ३म्

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः

॥ न्यायसूत्र ॥

मुक्ति

Salvation and its means

डॉ मुमुक्षु आर्य

मनुस्मृति के आधार पर पाप पुण्य की गति

- जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते है ।
- जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं ।
- जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ, निन्दित कर्म करने हारे सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं ।
- जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी, दाम्भिक पुरुष अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस जो हिंसक, पिशाच जो अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं; वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है ।
- जो अत्यन्त रजोगुणी हैं वे झल्ला अर्थात् तलवार आदि से मारने वा कुदार आदि से खोदनेहारे, मल्ला अर्थात् नौका आदि के चलाने वाले, नट जो बांस आदि पर कला कूदना चढ़ना उतरना आदि करते हैं, शस्त्रधारी भृत्य और मद्य पीने में आसक्त हों; ऐसे जन्म नीच रजोगुण का फल हैं ।
- जो अधम रजोगुणी होते हैं वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के पुरोहित, वादविवाद करने वाले, दूत, प्राड्विवाक (वकील बारिष्टर), युद्ध विभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं ।
- जो उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गाने वाले) गुह्यक (वादित्र बजानेहारे), यक्ष (धनाढ्य) विद्वानों के सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूप वाली स्त्री का जन्म पाते हैं ।
- जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो ।
- जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्त्ता, वेदार्थवित्,

ओ३म् सच्चिदानन्द परमेश्वराय नमो नमः

मुक्ति

अनुक्रम

पुस्तक प्राप्ति स्थान

☞ वेद संस्थान, जी-6, सैक्टर-12, नोएडा-201301,
दूरभाष 0120-2553467, 9350206476

☞ आर्य प्रकाशन - 814, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-110006
दूरभाष 23233280

☞ दर्शनयोग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, पोस्ट सागपुर, जिला सावरकांठा,
गुजरात - 383307, दूरभाष 23233280

☞ आर्य समाज, आर्य नगर, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55, दूरभाष 23514517

मूल्य रूपये 20/-

।। ओ३म् ।।

मुक्ति

भूमिका

विश्व के अधिकांश बुद्धिजीवी, विद्यार्थी, स्कूल कालिजों के अध्यापकगण, नेतागण आदि के लिए यह मुक्ति शब्द नया है, कुछ तो इसका उपहास करने में भी संकोच नहीं करते । विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी इसका कोई स्थान नहीं, बहुतों के लिए यह कल्पनामात्र है, मनुष्य जीवन का मुख्य लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है प्रायः लोग इसे मानने को तैयार नहीं । धर्म और ईश्वर में आस्था रखने वाले कुछ लोग ऐसा मानते भी हैं तो उपर-उपर से अथवा गलत अर्थ में । न तो माता पिता अपने बच्चों को यह शिक्षा देते हैं, न विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक और न ही राष्ट्र के कर्णधार कि उनके जीवन में मुक्ति सर्वोपरि है । इस मनुष्य जन्म को पाकर मुक्ति प्राप्त कर लो तो ठीक वरन् न जाने कब करोड़ों वर्षों बाद पुनः यह मनुष्य जन्म मिले । किसी को चिन्ता नहीं । बहुत कम लोग इस पर पूर्ण विश्वास करते हुए गम्भीरतापूर्वक मुक्ति पाने के लिए प्रयास करते हैं । सुना जाता है कि एक बार एक बालक विद्यालय से घर लौटते हुए तालाब से एक मछली पकड़ लाया, मछली बहुत छटपटा रही थी । बालक की माता ने देखा कि उनका पुत्र मछली की छटपटाहट को शांत करने के लिए कई प्रकार के उपाय कर रहा है, कभी उसको सहलाता है, कभी चूमता है, कभी पंखे के नीचे गिराता हैं तो कभी वातानुकूल कक्ष में

ले जाता है, कभी उसे कुछ न कुछ खाने को पीने को देता है, परन्तु किसी भी प्रकार से मछली शांत नहीं हो रही - उसकी तड़फन बढ़ती ही जा रही है । इस दयनीय स्थिति को देख माता ने अपने पुत्र को कहा वत्स इसे पानी के टब में डाल दो । बालक के ऐसा करते ही मछली आनंद में मग्न हो पानी से भरे टब में क्रीड़ा करने लगी । ठीक यही अवस्था आज मनुष्य की है, वह अपने को पूर्ण सुखी, शांत व आनंदित करने के लिए नाना प्रकार के उपाय करता है । 20-30 वर्ष तक दिन रात परिश्रम कर कोई डिग्री प्राप्त करता है, उस डिग्री के आधार पर नौकरी पाने के लिए दर दर भटकता है, मनपसन्द जीवन साथी को पाने के लिए परिश्रम करता है, दिन रात परिश्रम कर या नौकरी कर परिवार का पालन-पोषण करता है, सुख पाने के लिए कई प्रकार के आधुनिक साधनों से घर को सुसज्जित करता है, रेडियो, टी० वी०, फ्रिज, ए० सी० (A.C.), स्कूटर, मोटर साईकिल, कार आदि को जुटा कर अपने को सुखी करने का प्रयत्न करता है परन्तु नानाप्रकार के दुःख, कलेश, पीड़ाएं उसका पीछा नहीं छोड़ते। कभी स्वयं बीमार,कभी पत्नी बीमार, कभी बच्चे बीमार, कभी प्रियजन की मृत्यु, कभी किसी से झगड़ा-मुकदमा, कभी परिवारजनों में आपसी ईर्ष्या-द्वेष, कभी बच्चों का उत्पात, हठधर्मी, प्रेम विवाह, तिरस्कार, कभी सरकार की ओर से सेल टैक्स, इन्कम टैक्स आदि के नोटिस, कभी ज़मीन जायदाद के झगड़े, कभी तरह-तरह के असाध्य रोग, कभी अपंग मन्दबुद्धि पुत्र-पौत्र, कभी कार्यालय में तनाव, कभी उद्योग में मजदूरों की हड़ताल, कभी आसामाजिक तत्वों द्वारा अन्याय, अत्याचार, मारपीट, लूटखसूट, कभी भ्रष्टाचार-रिश्वत-प्रताड़न, कभी मकान - दुकान में आग, कभी
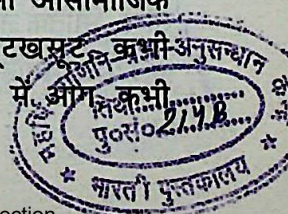
दुर्घटनाएं तो कभी सब कुछ होते हुए भी सूनापन-खालीपन, निराशा-बेचैनी-आत्महत्या, पति पत्नी के झगड़े, तलाक के मुकदमें, कभी बच्चे ने होने का दुःख, कभी बच्चों के नालायक होने का दुःख, कभी पुत्र-पौत्रों की नौकरी-व्यापार-विवाह आदि की चिन्ता। मनुष्य इस मकड़ जाल से जितना निकलने की चेष्टा करता है उतना ही उसमें फंसता जाता है। अपने को तरह तरह के साधनों द्वारा शांत करने का प्रयास मनुष्य करता है परन्तु ऐसा हो नहीं पाता। यह सिखाया, पढ़ाया या बताया ही नहीं जाता कि किस प्रकार से वह शांत हो सकता है, किस प्रकार इसकी तृप्ति हो सकती है, किस प्रकार उसका मनुष्य जीवन सफल हो सकता है। ऐसा क्या किया जाए कि मनुष्य कह उठे - जो प्राप्त करना था कर लिया अब कुछ और प्राप्त करना शेष नहीं रहा।

यह हो सकता है परन्तु तभी जब शिक्षा-दीक्षा सर्वांगीण होगी। आधुनिक शिक्षा बहुत अधूरी है। शिक्षा के तीन अनिवार्य अङ्ग हैं - ईश्वर, जीव और प्रकृति। परन्तु इन तीन में से दो अङ्ग ईश्वर और जीव का ज्ञान-विज्ञान तो पाठ्यक्रमों में है ही नहीं। इन दो को अनावश्यक, अनुपयोगी, काल्पनिक, साम्प्रदायिक, व्यक्तिगत आदि नाम देकर पूर्णतया छोड़ दिया गया है। शिक्षा के तीन अनिवार्य अङ्गों में से इन दो को छोड़ देने से दो तिहाई भाग उपेक्षित हो गया है, एक तिहाई भाग पढाया जाता है वह भी पूर्ण नही हैं। इस एक तिहाई भाग में - प्रकृति अर्थात् परमाणुओं और परमाणुओं से बनी सृष्टि, भौतिक ज्ञान-विज्ञान, कम्पयूटर, उद्योगों की बड़ी बड़ी मशीनें, कल पूर्जे, विमान, रेलगाड़ी, समुद्री जहाज, युद्ध के मारक अस्त्र-शस्त्र,

अन्न, वस्त्र, मकान, खेलकूद, रेडियो, दूरदर्शन, दूरभाष, धन बढ़ाने व सुरक्षित रखने की योजनाएं आदि आते हैं । निरन्तर इनमें विकास हो रहा है । जो आज देख रहे हैं आगामी 10-20 वर्षों में उसमें बहुत सुधार हो जाता है । हमारी दौड़ यहीं तक सीमित है, अधिक से अधिक ग्रहों-उपग्रहों पर पड़ी चट्टानों को छू कर जिज्ञासा शान्त करने का प्रयास कर लेते हैं । जैसे पृथिवी गृह है वैसे ही अन्य ग्रह इस सूर्य व अन्य नक्षत्रों के इर्द गिर्द चक्कर लगा रहे हैं, पृथिवी ग्रह पर जीवन है तो किसी अन्य पर अवश्य होगा - यह अनुमान किसी न किसी दिन सही सिद्ध हो जायेगा, परन्तु क्या उससे मनुष्य की तृप्ति हो जाएगी ? तथा उसके दुःखों को निपटारा हो जाएगा ?

मनुष्य यह क्यों नही विचारता कि उसकी इस अन्धी दौड़ से स्थाई सुख मिल नहीं सकता। स्थाई सुख किसमें है- इसकी खोज वह करने को तैयार नहीं । कोई मार्ग दिखाता है तो उसकी सुनने को तैयार नहीं । प्रकृति-सृष्टि से आगे भी कोई संसार है, कोई तत्व है इस पर विचार किए बिना मनुष्य का कल्याण नहीं । वह मछली की तरह तब तक छटपटाता रहेगा जब तक वह प्रकृति से अतिरिक्त ईश्वर व जीव की सत्ता को आत्मसात कर उसको अनुभव नहीं कर लेगा। बात बड़ी सरल है परन्तु मानने को तत्पर नहीं । जिस प्रकार प्रकृति (परमाणु) अनादि हैं सूक्ष्म है, अदृश्य हैं उन्हें कोई बनाने वाला नहीं, अपने आप ही सत्ता में है, स्वयंभू हैं उसी प्रकार दो अन्य तत्व ईश्वर और जीव भी अनादि हैं, Eternal हैं । जिस प्रकार मिट्टी से अपने आप घड़ा नहीं बन सकता, सोने से अपने आप आभूषण नहीं बन सकता, लोहे से अपने आप घड़ी नहीं बन सकती, रंगो से अपने
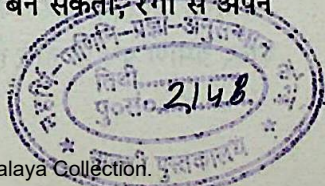
आप चित्र नहीं बन सकता उसी प्रकार प्रकृति से अपने आप पृथिवी, अप, तेज, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नाना प्रकार के बीज आदि नहीं बन सकते । जो बनाने वाला है वह ईश्वर है, जिसके प्रयोग के लिए ये सब कुछ बनाया जाता है वे जीव हैं, आत्माएं हैं । दोनों प्रकृति से भी अधिक सूक्ष्म हैं निराकार हैं । आत्माएं अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान, एक देशी चेतन हैं परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, चेतन और आनंदस्वरूप है उसी आंनद की खोज सब जीवों को/ मनुष्यों को है और वह आनंद पाया जा सकता है । उसको पाने का क्या विधि विधान है उसको जान लें तो मनुष्य की अन्धी दौड़ समाप्त हो सकती है, उसके दुःखों का अन्त हो सकता है उसकी मुक्ति हो सकती है ।

प्राचीन काल के वैज्ञानिकों ने ऋषियों ने इस पर बड़ी खोज की और मनुष्य जाति का मार्गदर्शन किया । जिन लोगों को उन ऋषियों की बात पर विश्वास है उनके लिए मार्ग कुछ सरल हो जाता है परन्तु जो उन ऋषियों के वचनों पर विश्वास नहीं करते परन्तु आधुनिक डाक्टरों, इन्जिनियरों, वैज्ञानिकों, अध्यापकों की बातों पर पूरा विश्वास करते हैं उनके लिए मुक्ति का मार्ग बहुत लम्बा, कठिन और असाध्य हैं । मुक्ति की पृष्ठभूमि को और अधिक विस्तार न देते हुए हम मुक्ति जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय का संक्षिप्त विधि-विधान लिखने का प्रयास करते हैं । स्पष्ट है हमारा यह विवरण ऋपियों-मुनियों की खोज पर ही आधारित है। ऋषि मुनियों के वचन 'शब्द प्रमाण' के रूप में सब को मान्य होने चाहिए । किसी भी वस्तु को सिद्ध करने के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण और शब्द प्रमाण प्रर्याप्त होते हैं । जो लोग अपनी बुद्धि को गौण या कम

मानकर ऋषियों की बात का सम्मान करते हैं वे लोग सब प्रकार से दुःखों से छूटने की आशा कर सकते हैं । जो लोग ऐसा मानने में असमर्थ हैं वे मुक्ति की कक्षा में प्रवेश के अभी अधिकारी नहीं हैं। उनको अभी बहुत चिन्तन, मनन, स्वाध्याय और आवागमन की आवश्यकता है । जिस प्रकार मछली जल के भण्डार में जाकर आनन्दित हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य भी आनन्द के भण्डार ईश्वर में जाकर आनन्दित हो सकता है । सब दुःखों से छूट सकता है। मुक्ति जैसे सर्वधिक महत्वपूर्व विषय को बार बार पढ, पढा, सुन, सुना तथा मनन कर इसके संस्कारों को दृढ करते रहना चाहिए।

— डॉ मुमुक्षु आर्य
वेद संस्थान, जी-6, सैक्टर-12,
नोएडा - 201301, उ० प्र०,
दूरभाष : 0120-2553467, 9350206476
वर्ष 2005, सृष्टि संवत - 1,96,8,530105

मुक्ति

मुक्ति की परिभाषा करते हुए हमारे ऋषि लिखते हैं कि सब प्रकार के दुःखों से छूट कर एक परान्त काल तक पूर्ण आनन्द में रहना, दुःख लेशमात्र भी न होना मुक्ति है । यही मनुष्य का मुख्य लक्ष्य है, अभिलाषा है, वह न माने तो और बात है । शेष जितने भी लक्ष्य हैं चाहे वह डाक्टर, इन्जिनियर, वकील, जज, प्रधान मंत्री आदि बनना क्यों न हो सब गौण हैं । सेवा व परोपकार की दृष्टि से ये सब करना मुक्ति में सहायक या साधन मात्र हो सकता है। मुक्ति में जीव इस शरीर के बिना ईश्वर के सान्निध्य में, ईश्वर के आनंद में मग्न रहता है, लम्बेकाल तक उसका पुनः जन्म मरण नहीं होता ।

इस सम्बन्धी बहुत से प्रश्न, अथवा जिज्ञासाएं उठनी स्वाभाविक हैं : **प्रथम प्रश्न** यह उठता है कि मुक्ति में जब यह मनुष्य का शरीर नहीं रहता तो वह किस प्रकार सुख या आनन्द भोगता है ? इसका उत्तर यह हैं कि जीवात्माएं अनेक हैं उनकी संख्या तो ईश्वर ही जानता है, प्रत्येक जीवात्मा में चौबीस प्रकार की स्वाभाविक शक्तियां या गुण (Inherent Qualities) होते हैं । इन गुणों और ईश्वर के आश्रय से जीवात्माएं आनन्द भोगती हैं । ये चौबिस शक्तियां इस प्रकार हैं-

1.	बल	=	Strength
2.	पराक्रम	=	Energy
3.	आकर्षण	=	Attraction
4.	प्रेरणा	=	Suggestion
5.	गति	=	Motion

6. भीषण = Intimidation (भय)
7. विवेचन = Analytic Power
8. क्रिया = Skill
9. उत्साह = Courage
10. स्मरण = Memory
11. निश्चय = Discernment
12. इच्छा = Desire
13. प्रेम = Love
14. द्वेष = Hatred
15. संयोग = Association
16. विभाग = Dissociation
17. संयोजक = Combining Power
18. विभाजक = Dividing Power
19. श्रवण = Hearing
20. स्पर्शन = Touch
21. दर्शन = Sight
22. स्वादन = Taste
23. गन्ध = Smell
24. ज्ञान = Knowledge

इन 24 प्रकार की शक्तियों के कारण मुक्त जीवात्मा जब सुनना चाहता है तो सुन लेता है, देखना चाहता है, देख लेता है, गति करना चाहता है तो गति कर लेता है, ईश्वर के आश्रय से सदैव आनंद में तो रहता ही हैं । कुछ दार्शनिक महानुभाव इन 24 प्रकार की शक्तियों को जीवात्मा का स्वाभाविक मन भी कह देते है । वास्तव में जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर के दो भाग होते हैं – भौतिक एवं

अभौतिक । भौतिक भाग सतरह प्रकार के तत्वों से बना होता है - 5-ज्ञानेन्द्रियां, 5-कर्मेन्द्रिया, 5-सूक्ष्मभूत, मन और बुद्धि । ये सतरह तत्व प्रकृति सत्व रज तम से बने होते हैं । मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा का स्थूल शरीर छूट जाता है और सम्बन्धी जन उसे जला देते हैं । परन्तु यह सूक्ष्म शरीर तब तक साथ लगा रहता हैं जब तक प्रलय नहीं हो जाती या मोक्ष नहीं हो जाता । प्रलय और मोक्ष अवस्था में जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर का यह 17 तत्वों से बना भौतिक भाग भी नष्ट हो जाता है । सूक्ष्म शरीर का अभौतिक भाग सदैव साथ रहता है परन्तु मोक्ष अवस्था में ही सक्रिय होता है संकल्प मात्र से दिव्य शरीर रच लेता है । इस अभौतिक भाग में विद्यमान 24 प्रकार की शक्तियों एवं ईश्वर के आश्रय जीवात्मा बिना स्थूल शरीर के सुख भोगता है, आनन्द में रहता है तृप्त रहता है ।

दूसरा प्रश्न इस सम्बन्धी किया जाता है कि मोक्ष अवस्था में जीव एक स्थान पर रहता हैं या घूमता रहता है ? इसका उत्तर यह है कि मोक्ष अवस्था में जीव यहाँ चाहे आ सकता हैं। एक स्थान पर रहना चाहे एक स्थान पर रह सकता है । जब सृष्टि होती है तो बिना किसी बाधा के वह एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक, और एक ग्रह से दूसरे ग्रह या उपग्रह तक जा सकता है, सूर्य में जाकर सब क्रियाएं देख सकता है, अव्याहत गति से आता जाता है, विभिन्न प्रकार की सृष्टियां, जीव जन्तु, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि देखकर आनन्दित होता है, अन्य मुक्त आत्माओं से वार्तालाप कर सकता है ।

तीसरा प्रश्न उठाया जाता है कि मुक्त अवस्था में जीव सदा के लिए चला जाता है या कुछ काल पश्चात् लौट आता है ? इसका उत्तर है कि जीव एक निश्चित अवधि 'परान्तकाल' तक मोक्ष अवस्था में रहता है पश्चात् पुनः साधारण मनुष्य का जन्म लेता है।

यह परान्तकाल क्या है इसे इस प्रकार से परिभाषित किया गया हैं—

चार लाख बतीस हजार वर्ष का	=	एक कलियुग	43,20,000 वर्ष
आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष का	=	द्वापर युग	
बारह लाख छियानवें हजार वर्ष का	=	त्रेता युग	
सतरह लाख अठाईस हजार वर्ष का	=	सतयुग	

चारों युगों को मिलाकर एक चतुर्युगी बनती है । ऐसी 1000 चतुर्युगियों का एक ब्रह्मा का दिन और ऐसी हजार चतुर्युगियों की एक ब्रह्मा की रात्रि । अर्थात् 2000 चतुर्युगी की एक अहोरात्रि । ऐसी तीस अहोरात्रियों का एक महीना और ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे एक सौ वर्षों का एक परान्तकाल होता है । जो 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों के बराबर होता है । इसे यूँ भी कह सकते हैं कि जितना समय 36000 बार सृष्टि उत्पत्ति, प्रलय में व्यतीत होता है उतने समय तक जीव मुक्ति के आनन्द में रहता है । सृष्टि उत्पत्ति का काल = 4 अरब 32 करोड़ = 432 करोड़ वर्ष, सृष्टि प्रलय का काल भी = 4 अरब 32 करोड़ = 432 करोड़ वर्ष। दोनों को मिला कर 8 अरब 64 करोड़ वर्षों का समय बनता है इसे 36000 से गुणा करें तो यह 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष के बराबर बनता है । इतने दीर्घकाल तक का पूर्ण आनन्द में रहता, दुःख लेश मात्र भी न होना सम्भवतः आज के मनुष्य को बड़ा आश्चर्यजनक लगता हो परन्तु यह सत्य है और इसके लिए प्रयास न करना अथवा इसके प्रति अनभिज्ञ होना मनुष्य का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है । हम छोटे छोटे दुःख मिश्रित सांसारिक सुखों के लिए इतना परिश्रम करते, बुढ़ापे को सुखपूर्वक बिताने के लिए 50-60 वर्ष तक 8-8 घंटे की नौकरी करते या दिन रात व्यापार आदि के लिए भाग दौड़ करते परन्तु इस मुक्ति

के महान अदभुत सुख के लिए बिल्कुल प्रयास नहीं करते - यह बिडम्बना ही है । जो महानुभाव मानते हैं कि जीव सदा के लिए मोक्ष में चला जाता है उनसे निवेदन है कि जीव का सामर्थ्य थोड़ा है वह अनन्त काल तक मुक्ति का आनन्द भोग नहीं सकता, जिन साधनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है वे शरीरादि साधन सीमित हैं, सीमित साधनों का फल असीमित नहीं हो सकता, वेदादि शास्त्रों में प्रमाण है कि परमात्मा मुक्ति का सुख भुगा कर जीव को पुनः माता पिता के दर्शन करवाता है । दुःख सुख सापेक्ष हैं जैसे कोई मीठा ही खाता पीता जाए तो उसमें उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों को भोगने वाले को होता है । अन्त वाले कर्मों का फल ईश्वर अनन्त देवे तो ईश्वर का न्याय भी समाप्त हो जाए । मुक्ति में लय जाना वहाँ से पुनः वापिस न आना हो तो अनादि काल से चली आ रही इस सृष्टि उत्पत्ति प्रलय प्रवाह में एक न एक दिन जीवों का अभाव ही हो जाएगा । इसलिए न तो सदा के लिए मुक्ति होती है और न ही मुक्ति में जीव का ईश्वर में लय हो जाता है । लय होना तो एक प्रकार से जीवात्मा की ही प्रलय होना है, परन्तु जीवात्मा तो अनादि है, अविनाशी है, अजर है, अमर है ।

जीव मुक्त होकर भी शुद्ध स्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता ।

चौथा प्रश्न मुक्ति सम्बन्धी किया जाता है कि मुक्ति एक जन्म में होती है अथवा अनेक जन्मों में । उत्तर - मुक्ति अनेक जन्मों के पुरुषार्थ के उपरान्त होती है । पूर्व जन्म के संस्कार आगामी जन्म में काम आते हैं । मुक्ति के संस्कार जितने प्रबल होंगे उतनी ही अगले जन्म में गति होगी । जब भी जीव को मनुष्य जन्म मिले उसे

वह स्वर्णिम अवसर जान कर, उसे कई जन्मों का पुरुषार्थ मानकर, मुक्ति के लिए पूर्ण प्रयास करे । थोड़ी सी चूक से कई बार दोबारा मनुष्य जन्म पाने में लाखों-करोड़ों वर्ष लग सकते हैं । कहा भी है मनुष्य जन्म पाकर ईश्वर के आनंद को पा लिया तो ठीक वरन् महान् हानि है ।

पाँचवा प्रश्न है कि मुक्ति से लौटना तो जन्म मरण के सदृश है ऐसी मुक्ति के लिए श्रम करना व्यर्थ है । उत्तर- मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं हैं । जन्म मरण में दुःख ही दुःख है परन्तु मुक्ति में परान्त काल तक पूर्ण आनन्द में रहना, दुःख लेश मात्र भी न होना छोटी बात नहीं है। लोक में छोटे छोटे सुखों के लिए इतना परिश्रम करते, 5-10 हजार रुपयों का वेतन पाने के लिए 24-30 वर्ष तक विद्या प्राप्त करते, 12-12 घंटे काम करते तो इतने बड़े दुःख रहित सुख को व्यर्थ कहना मंदबुद्धि का लक्षण है ।

छठा प्रश्न है कि जीव बन्धन में, आवागमन के चक्कर में फंसता ही क्यों है ? उत्तर - जीव के बन्धन का कारण है उसकी अविद्या, उसके कुसंस्कार, उसके कुकर्म, उसकी वासनाएं, उसकी ऐषणाएं । जीव स्वभाव से शुद्ध बुद्ध मुक्त है परन्तु प्रकृति से बने पदार्थों के सम्पर्क में आकर उसकी चमक, दमक, आकर्षण में अविवेक के कारण फंस जाता है । धार्मिक विद्वान, माता, पिता, आचार्य के सानिन्ध्य में उसका यह अविवेक विवेक में परिवर्तित हो सकता है और वह सब बन्धनों की जंजीरों को तोड़ कर प्रभु मिलन का, मुक्ति का प्रयास करने लगता है । योगदर्शन 2.17 में कहा है - द्रष्टृदृश्योः संयोगी हेय हेतुः अर्थात् जीव प्रकृति का संयोग दुःख का कारण है ।

सातवां प्रश्न है कि जीव ब्रह्म होने से न जन्म लेता, न बन्धन

में आता, जब बन्ध ही नहीं तो मुक्ति क्या ? उत्तर- जीव ब्रह्म नहीं है, समाधि या मोक्ष अवस्था में आनन्द मग्न होने से वह कह उठता है कि मैं ब्रह्ममय हो गया हूँ, अहम् ब्रह्म अस्मि, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जीव ब्रह्म हो गया, सृष्टि का कर्ता-धर्ता हो गया। न ही जीव ब्रह्मा का अंश है। अंश मानोगे तो ब्रह्मा खण्डनीय हो गया और जीव में ब्रह्मा के सब गुण आ जाने चाहिएं क्योंकि अंशी में अंश के गुण आने स्वाभाविक हैं।

आठवां प्रश्न है कि सुख दुःख, शीत उष्ण शरीर अन्तःकरण आदि के धर्म हैं आत्मा निर्लेप है बन्धन में नहीं आता फिर मुक्ति कैसी ? उत्तर- शीतोष्ण व सुख दुःख को शरीरादि जड़ पदार्थ अनुभव नहीं करते उनके द्वारा जीवात्मा करता है। जैसे तलवार मे मारने वाला दण्डनीय होता है वैसे देह अन्तःकरण आदि से बुरे कर्मों का कर्ता जीवात्मा बन्धन में आता हैं।

नौवां प्रश्न होता है कि जीव ब्रह्मा का प्रतिबिम्ब है। अन्तःकरण में ब्रह्मा का प्रतिबिम्ब जीव है। जैसे दर्पण के टूटने फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण व देह के नष्ट होने से जीव (ब्रह्म) की कोई हानि नहीं होती। जीव मुक्त है ब्रह्म ही है फिर मुक्ति कैसी ? उत्तर - महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यह बालकपन की बात है। प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है और प्रतिबिम्ब के लिए आवश्यक है दोनों साकार वस्तुएं पृथक पृथक हों, कुछ दूरी पर हों परन्तु ब्रह्मा तो निराकार और सर्वव्यापक है उसका प्रतिबिम्ब कैसे हो सकता है ? जो कहो कि निराकार, व्यापक आकाश का प्रतिबिम्ब स्वच्छ जल में पड़ता है तो वह बाल बुद्धि का मिथ्या प्रलाप है क्योंकि स्वच्छ जल में जो प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वह वास्तव में जल और धूल के कणों का होता है। नीलापन जल के कारण,

धूंधलापन धूल कणों के कारण होता है । आकाश का प्रतिबिम्ब कभी नहीं होता ।

दसवां प्रश्न किया जाता है कि जैसे अग्नि के सम्पर्क में आकर लोहा लाल हो उठता है वैसे ही चेतन ब्रह्मा के सम्पर्क में आने से अन्तःकरण चेतन हो उठतें हैं ब्रह्मा ही हो उठते हैं तो मुक्ति कैसी ? उत्तर - अन्तःकरण ब्रह्म हो उठते हैं तो सर्वज्ञ क्यों नहीं हो जाते, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान क्यों रह जाते हैं । अन्तःकरण के भीतर का ब्रह्म अल्पज्ञ और बाहर का सर्वज्ञ तो इस प्रकार ब्रह्मा को खण्ड खण्ड क्यों करते हो। जो कहते हो यह तो अध्यारोप मात्र है, मिथ्या कल्पना मात्र है, समझाने के लिए ऐसा उदाहरण दिया जाता है तो यह मिथ्या कल्पना करने वाला ब्रह्मा मिथ्याज्ञानी और मिथ्याकारी होता है । दूसरा लोहा अग्निवत् होता है अग्नि नहीं । अग्नि से पृथक लोहा ही है । वास्तव में नवीन वेदान्तियों के तर्क नहीं कुतर्क मात्र हैं।

ग्यारवां प्रश्न मुक्ति होती है क्या इसमें कोई वेदादि शास्त्रों के प्रमाण हैं ? उत्तरः **ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चौबिसवें सूक्त के प्रथम और द्वितीय मन्त्र में** यह पूर्णतया स्पष्ट है । प्रथम मन्त्र (कस्य नूनं......) में प्रश्न किया गया है कि हम को मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में माता पिता का दर्शन कौन करवाता है । दूसरे मन्त्र में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि वही स्वप्रकाश स्वरूप अनादि परमात्मा मुक्ति का सुख भुगाकर माता पिता का दर्शन कराता है । इसी प्रकार **सांख्य दर्शन के सूत्र 'इदानिमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः'** में कहा गया है कि जैसे इस समय बन्ध और मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं । **मुण्डक उपनिषद् 'ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे'** में कहा गया है कि परान्तकाल के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के जीव संसार में आते हैं । वेद के

और भी अनेक प्रमाण हैं। यजुर्वेद '(31.18) वेदाहमेतम्...... विद्यते अयनाय' में कहा गया है कि उस महान् पुरुष को जो अविद्यारूपी अन्धकार से परे है, जिसका वर्ण अर्थात् ज्ञान आदित्य जैसा है उसको जान कर ही सब दुःखों से छूट कर मोक्ष प्राप्ति की जा सकती है इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं । इसी प्रकार यजुर्वेद '40.8 परिमाग्ने.....अमृतामअनु' मन्त्र में ईश्वर से जीवनमुक्तों जैसा बनाने की प्रार्थना की गई है ।

बारहवां प्रश्न है कि बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से ? उत्तर है निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृति कभी नहीं होती । बन्धन वाले बन्धन में रहते, मुक्ति वाले मुक्ति में रहते ।

तेरहवां प्रश्न अहम् ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, अयमात्मा आदि वेद वाक्यों का सही अर्थ क्या है ? उत्तर - प्रथम तो यह वेद वाक्य नहीं है ये ब्राह्माण ग्रन्थों के वचन है । नवीन वेदान्तियों ने इनके अर्थ का अनर्थ किया है । अहम् ब्रह्मास्मि का अर्थ है मैं ब्रह्ममय हूँ, तत्वमसि का अर्थ है मैं ब्रह्मस्थ हूँ सभी पदार्थ ब्रंह्मस्थ हैं, अयमात्या का अर्थ है कि यह जो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म है जो सर्वत्र व्यापक है । इस तरह के वाक्यों का प्रयोग योगी लोग समाधि अवस्था में किया करते हें इनमें जीव व ब्रह्मा की एकता सिद्ध नहीं होती । जीव अल्पज्ञ है ब्रह्मा से सर्वथा पृथक है, उनका व्याप्य -व्यापक सम्बन्ध है, जीव बन्धन में आता है सदैव मुक्त नहीं है । गीता में भी कहीं कहीं जीव को ब्रह्मा का अंश कहा है जो वेदानुकुल नहीं हैं । ॠग्वेद के मन्त्र 'द्वा सुपर्णा सयुजा........' में ईश्वर, जीव व प्रकृति को भिन्न भिन्न कहा गया है ।

मुक्ति के वास्तविक साधन

मुक्ति, कैवल्य, मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयक्ष, निर्वाण Salvation, Emanapation आदि भिन्न भिन्न शास्त्रों ने मुक्ति के साधनों को भिन्न भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है परन्तु उन सब का उद्देश्य एक ही है - विवेक, वैराग्य को बढ़ाकर मोक्ष की ओर अग्रसर करना।

◆ **योगदर्शन के रचियता पातञ्जलि ऋषि ने सूत्र 1.2, 3 में** वृति निरोध को मुक्ति का उपाय बताया है । **योगश्चित्तवृति-निरोधः तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** अर्थात् चित्त को सांसारिक वृतियों से रहित कर ईश्वर चिन्तन में ही लगा देने से जीवात्मा दृष्टा परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो जाता है । **प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रयात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्** (योग 2.18) में कहा है कि प्रकाश (सत्), क्रिया (रज) स्थिति (तम) शीलं (स्वभाव) वाला, स्थूल-सूक्ष्म भूतों व इन्द्रिय स्वरूप वाला यह दृश्यम (संसार) भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने वाला है । आगे **सूत्र 2.25 तदम् भावात् संयोगऽभावःहानम् तद दृशे कैवल्यम् में कहा तद अभावात् (उस अविद्या के अभाव से) संयोगाऽभावः (द्रष्टा तथा दृष्य के संयोग का अभाव) हानम् (हान है) तद् दृशे : (वह दृष्टा आत्मा का) कैवल्यम् (मोक्ष है) इससे आगे के सूत्र 2.26 में कहा विवेक ख्यातिः** (प्रकृति पुरुष अर्थात् जीव व ईश्वर) के भेद का ज्ञान अविप्लवा (यथार्थ दृढ दोष रहित) हानोपायः (हान का, मोक्ष का उपाय है ।) सूत्र 3.50 में बताया कि दोषों का नाश व सब प्रकार की सिद्धियों के प्रति वैराग्य हो जाने से कैवल्य हो जाता है 'तद वैराग्यत्

अपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्' । सूत्र 4.26 तदा (तब) विवेकनिम्नं

कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् (ईश्वर, जीव, प्रकृति का विवेक रखने वाला चित्त कैवल्य को प्राप्त करने के समर्थ हो जाता है) सूत्र 4.34 में कहा कि आत्मा के लिए पुरुषार्थ अर्थात् भोग और अपवर्ग का कार्य पूरा होने पर सत्व आदि गुणों का कोई कार्य शेष नहीं रहता तथा वे अपनी कारण अवस्था में लौट जाते हैं इसी का नाम कैवल्य है - पुरुषार्थशून्यानांगुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरुप प्रतिष्ठा वा चित्तशक्तिरिति (योगदर्शन 4.34)

◆ सांख्य दर्शन के रचियता कपिल मुनिजी ने सूत्र में 1.1 में कहा है कि –

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृतिशत्यन्तपुरुषार्थः
(अथ, त्रिविध दुःख अत्यन्त निवृत्तिः अत्यन्त पुरुषार्थः)

अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीन प्रकार के दुःखों से पूर्णतया छूट जाने का नाम पुरुषार्थ है मोक्ष है । इन दुःखों से छूटने के लिए चित्त को स्थिर करने, वृतिरहित करने और ईश्वर, जीव प्रकृति के भेद को जानना आवश्यक है। सूत्रकार का कहना है कि इस भेद को जानने के लिए जगत् रचना का ज्ञान आवश्यक है । रचना के समय का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं इस कारण अनुमान प्रमाण व शब्द प्रमाण का आश्रय लेना पड़ता है। युक्ति से भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है शर्त यह है कि युक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित हो जैसे धुंआ देखकर अग्नि का ज्ञान होता है । मूल कारण तीन हैं निमित्त, उपादान, साधारण । भोगों में लिप्त व्यक्ति को मोक्ष का उपदेश करना निरर्थक है । सूत्र 1.61 में बताया कि सत्व रजस् तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है । प्रकृति से

महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएं, 5 कर्मेन्द्रियां, 5 ज्ञानेन्द्रियां, मन, तन्मात्राओं से पांच स्थूल भूत बनते हैं इनके साथ पुरुष (जीवात्मा चेतन पदार्थ) हैं ये पच्चीस का गण (समूह) है । 26 वां ईश्वर जीवों के कल्याणार्थ प्रकृति की साम्यावस्था भंग करता है। जब जीवात्मा यह भली प्रकार समझ लेता है कि वह शरीर नहीं, वह शरीर से पृथक अस्तित्व रखता है तो कष्ट की अनुभूति जीवात्मा तक नहीं पहुंचती । जब जीवात्मा को प्रकृति से बने पदार्थों में नश्वरता आदि दोष दीखने लगते हैं उसे प्रकृति के पदार्थों से रस लेने की इच्छा नहीं होती, उसे विरक्ति अर्थात वैराग्य हो जाता है (विरक्तस्य तत्सिद्धे 2.2) जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है। संक्षेप में सांख्य दर्शन में पच्चीस पदार्थों के तत्व ज्ञान से, विवेक वैराग्य से मोक्ष की प्राप्ति कही है । (5 ज्ञानेन्द्रियां + 5 कर्मेन्द्रियां + 5 सूक्ष्म भूत/तन्मात्राएं + 5 स्थूल भूत + प्रकृति + 1 महतत्व + 1 अहंकार + 1 मन + 1 जीवात्मा = 25) जैसे शरीर की चीर फाड करके अपनी रचना देखकर उसके प्रति मोह भंग होता है ऐसे ही प्रकृति से बने पदार्थों की चीरफाड कर अर्थात् रचना देखने से उसके प्रति मोह भंग होता है । सब नाम और रूप का आकर्षण छलावा मात्र है। यह भेद यह रहस्य अच्छी तरह जान लें तो संसार के प्रति राग नष्ट होने लगता है । सांख्य ने जीव को नित्य, शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वतंत्र कहा है यहाँ नित्य का अर्थ है सदा रहने वाला, शुद्ध का अर्थ है एकतत्व अर्थात संघात नहीं, बुद्ध का अर्थ है अल्पज्ञ चेतन, मुक्त का अर्थ है मिश्रित न होने वाला, स्वंतत्र का अर्थ है कर्म करने में स्वतंत्र फल भोगने में परतंत्र । ईश्वर को भी ऐसा ही कहा गया है वहां अर्थ में कुछ भेद हो जाता है जैसे ईश्वर बुद्ध है का अर्थ सर्वज्ञ चेतन पदार्थ। योगदर्शन में ईश्वर का लक्षण क्लेश, सकाम कर्मों, कर्म फलों व

संस्कारों से रहित बताया। सांख्य ने तीन प्रकार के दुःख बताए तो योग दर्शन ने चार प्रकार के दुःख बताए। बन्धन का कारण अविवेक और मोक्ष का कारण ईश, जीव प्रकृति का तत्व ज्ञान है परन्तु तत्व का ज्ञान मात्र पढ़ने सुनने से नहीं होता। मात्र श्रवंण से 10 प्रतिशत, मात्र मनन से 20 प्रतिशत, निदिध्यासन से 30 प्रतिशत, साक्षात्कार अर्थात जीवन में अपना लेने से 50-100 प्रतिशत विवेक / तत्व ज्ञान होता है ऐसा कहा जा सकता है। सांख्य 4.8 में उपदेश है कि जो वस्तु मोक्ष का साधन नहीं है, उसका चिन्तन न करें क्योंकि वह बन्धन का हेतु है जैसे राजा भरत हिरण के बच्चे के चिन्तन से बन्ध गया। (असाधन अनुचिन्तनम् बन्धाय भरतवत्)

◆ न्याय दर्शन के रचियता गौतम ऋषि जी ने सोलह पदार्थों के तत्व ज्ञान से मुक्ति मानी है। प्रथम सूत्र में कहा **प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवाद जल्पवितण्डा हेत्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः**– अर्थात् प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों के तत्व ज्ञान से निःश्रेयस अर्थात मोक्ष की प्राप्ति होती है। इनके संक्षिप्त अर्थ हैं :-

1. प्रमाण - जिससे वस्तु का ठीक प्रकार से स्वरूप जाना जाए। ये प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ये चार प्रमाण हैं।
2. प्रमेय - जो प्रमाण से जाना जाए।
3. संशय - एक वस्तु के विषय में दो प्रकार का ज्ञान हो, जहां निर्णय न हो।

4. प्रयोजन - जिस उद्देश्यय को लेकर व्यक्ति दौड़ धूप करता है ।

5. दृष्टांत - लौकिक व्यक्ति व विद्वान जिसे एक रूप में देखतें हैं ।

6. सिद्धान्त - प्रमाणों से एक निश्चित व्यवस्था देना ।

7. अवयव - किसी बात को स्वंय समझने और दूसरों के समझाने के लिए जो प्रयोग होता है । इस प्रयोग के पांच भाग हैं-अनुमान प्रमाण को विस्तार से समझाने के लिए पञ्चावयव-पद्धति को प्रस्तुत किया है :-

(i) प्रतिज्ञा - अपनी मान्यता को प्रगट करना। (जैसे सृष्टि नाशवान है)

(ii) हेतु - मान्यता का कारण बताना । (उत्पन्न होने के कारण)

(iii) उदाहरण - अपने हेतु को लौकिक दृष्टांत से समझाना, पुष्ट करना ।(जो जो वस्तु उत्पन्न होती है वह वह नाशवान होती है जैसे घड़ा, मकान वस्त्र आदि)

(iv) उपनय - मान्यता को उदाहरण के साथ उपमा देकर कहना । (जैसे यह बड़ा मकान हैं वैसे ही सृष्टि है)

(v) निगमन - हेतु के साथ प्रतिज्ञा को दोहराना । (उत्पन्न होने के कारण सृष्टि नाशवान हैं)

8.	तर्क	–	किसी विषय को सिद्ध करने के लिए प्रमाणों के द्वारा उहा करना, विचार करना ।
9.	निर्णय	–	पक्ष–प्रतिपक्ष को जानकर एक निश्चित मत देना ।
10.	वाद	–	एक ही विषय सम्बन्धी परस्पर विरूद्ध मान्यताओं को स्वीकार कर विचार करना।
11.	जल्प	–	वाद के रहते छल, जाति, निग्रहस्थान का प्रयोग करना ।
12.	वितण्डा	–	अपनी मान्यता को प्रकट नहीं करना, दूसरे के मत का खण्डन करते जाना ।
13.	हेत्वाभारा	–	गलत हेतु से अपने पक्ष को सिद्ध करना।
14.	छल	–	अर्थ की विविधता के कारण किसी अन्य व्यक्ति के सच्चे वचन का खण्डन करना अर्थात वक्ता के अभिप्राय के उल्टा करके कहना जैसे नव (नये) का अर्थ नौ लेना, मंच पुकारते का अर्थ मंच पर खडे विद्वान पुकारते हैं अर्थ न लेकर जड मंच पुकराते हैं अर्थ लेना ।
15.	जाति	–	सच्चे सिद्धान्त को गलत हेतु से खण्डित करना ।
16.	निग्रहस्थान	–	गलत उतर देना या चुप रहना।

अर्थात इन 16 पदार्थों / साधनों द्वारा सत्य–असत्य का निर्णय कर विवेक वैराग्य उत्पन्न कर मोक्ष की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है ।

इससे अगले सूत्र — **'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरऽपाये तदनन्तरापायात् अपवर्ग'** में बताया गया है कि दुःख का कारण जन्म, जन्म का कारण प्रवृत्ति (अच्छे बुरे कर्म) प्रवृत्ति का कारण दोष (राग, द्वेष, मोह) और दोष का कारण मिथ्याज्ञान है। फलतः मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने से दोषों का नाश, दोषों के नाश से प्रवृति का नाश, प्रवृत्ति के नाश होने से जन्म का नाश और जन्म के नाश से दुःखों का नाश सम्भव है। सूत्र 1.1.22 में मोक्ष का स्वरूप बताते हुए गौतम ऋषि जी न बताया कि सब प्रकार के दुःखों से अत्यन्त छूट जाना मोक्ष है **(तदत्यन्त विमोक्षो अपवर्गः)** सभी शास्त्र घुमा फिरा कर एक ही बात कह रहे हैं कि दुःखों की गहरी जड़ में मिथ्या ज्ञान बैठा है। मन, वाणी शरीर द्वारा कोई कार्य करना प्रवृत्ति है यह पूर्वकृत कर्मों के सहयोग से हुआ करती है। इस विषय में ऐसी भावना करना कि कर्म कोई नहीं और न ही कर्मफल कुछ है, सब प्रवृत्ति आकस्मिक एवं नैसर्गिक होती रहती है - यह प्रवृत्ति विषयक मिथ्या ज्ञान है। इसी प्रकार आत्मा, परमात्मा, प्रकृति सृष्टि, अपवर्ग के विषय में उल्टा ज्ञान हो सकता है। अपवर्ग के विषय में कोई कह सकता है कि निष्क्रय अपवर्ग को कौन बुद्धिमान चाहेगा ? ऐसे मिथ्या ज्ञान के कारण ही व्यक्ति डाह, दम्भ, छल-कपट, लोभ आदि अनेक दोषों में फंस जाता है। यद्यपि संसार में सुख की कमी नहीं, परंतु वह सुख अनेक प्रकार के दुःखों के भारी भार से दबा रहता है। 16-पदार्थों के तत्व ज्ञान से सब मिथ्याज्ञान समाप्त होता है और मिथ्याज्ञान समाप्त होने से क्रमशः दोष, प्रवृत्ति, जन्म व दुखों का नाश होता है। यह न्याय दर्शन में मोक्ष का स्वरूप बताया है।

◆ **वैशेषिक दर्शन** में कणाद ऋषि ने पृथिवी से लेकर ईश्वर

तक की वस्तुओं के विशेष ज्ञान/ विशेषधर्म का बोध कराने हेतु एवं अभ्युदय (अर्थ व काम) और निःश्रेयस (धर्म-मोक्ष प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए छः पदार्थों के तत्व ज्ञान पर बल दिया हैं- ये पदार्थ हैं — 9 द्रव्य, 24 गुण, 5 कर्म, 2 सामान्य, विशेष, समवाय (नित्य सम्बन्ध), वैशेषिक में उपादान कारण को समवायि कारण और साधारण को निमित्त कारण के अन्तर्गत ही लिया है । छः पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य से उत्पन्न होने वाले तत्व ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है । **(सूत्र 1.4-धर्म विशेष प्रसूताद् द्रव्यगुण कर्म सामान्य विशेष समवायानां पदार्थानाम् तत्वज्ञानान्नि निःश्रेयसम्)**

(i) 9 द्रव्य - पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन ।

(ii) 24 गुण - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, ज्ञान, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द ।

(iii) 5 कर्म - उत्क्षेपण = ऊपर को उठना या उठाना, अवक्षेपण् = नीचे को जाना, आकुच्चन = चारों ओर से सिकुड़ना, प्रसारण = चारों ओर से फैलाना, गति = शेष सब प्रकार की गत्तियाँ

(iv) सामान्य - (समानता, साधर्म्य) जो जिसका भाव होता है वह वही रहता है जैसे मनुष्यत्व मनुष्य में, द्रव्यों में द्रव्यत्व पर सामान्य है, छोटा सामान्य है परन्तु प्राणित्व सब प्राणियों में यह बड़ा सामान्य या अपर सामान्य है । द्रव्य गुण कर्म

में समानता है कि तीनों सत्तात्मक, अनित्य, द्रव्यों के आश्रित, कार्य, कारण हैं ।

(v) विशेष - वैशेषिक में विशेष अनन्त हैं। किसी दो के स्वभाव, गुण, सूरत, आवाज, अंगुलियों के निशान शत प्रतिशत एक जैसे नहीं होते ।

(vi) समवाय - उपादान कारण

पांच महाभूतों / द्रव्यों को उपरोक्त छः भागों में विभक्त करके वर्णन किया गया है। पदार्थ के तीन लक्षण होते हैं - सत्ता (अस्तित्व), नाम और ज्ञेयत्व (जानने योग्य) जैसे पृथिवी का अस्तित्व है, नाम है, जानने योग्य है इसलिए पृथिवी पदार्थ है, वस्तु है, तत्व है । द्रव्य समवायि कारण व निमित्त कारण होते हैं, गुण असमवायि कारण और निमित्त, और कर्म केवल असमवायि कारण होते हैं। समवायि कारण = उपादान कारण, असमवयि कारण = संयोग, निमित्त कारण = साधारण व निमित्त।

◆ **वेदान्त दर्शन** - सभी दर्शन आस्तिक हैं, वैदिक हैं परन्तु व्यास ऋषि के वेदान्त में मुख्य रूप से सबसे बड़े, सर्वव्यापक परमात्मा को जानने की इच्छा को मोक्ष का कारण बताया है। प्रकृति की असारता, रहस्य, भेद को जान कर उसमे मोह भंग हो जाने पर जब ईश्वर को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा हो और उसको प्राप्त करने के लिए सब पुरुषार्थ, विधि विधान करे तो मोक्ष होता है । वेदान्त 1.1 **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** । ब्रह्म का लक्षण करते हुए सूत्र 1.2 **जन्मादि अस्य यतः** - अर्थात जन्मादि = सृष्टिउत्पति-प्रलय (अस्य) इस जगत की, यतः = जिससे होती है वह ब्रह्म है । अर्थात् ब्रह्म जगत का निमित्त कारण हैं । सूत्र 3.39 'कम्पनात्' — में कहा कि

उसी के भय से अग्नि तपती है, सूर्य चमकता है, विद्युत चलायमान होती है, वायु चलती है, प्राण कार्य करते हैं । उसको जान कर सब दुखों से छूट कर मुक्ति हो सकती है । सूत्र 4.2 'मुक्तः प्रतिज्ञानात्' — जो मुक्तावस्था है वह पहिले अप्राप्त थी क्योंकि उसका प्रतिपादन किया गया है । सूत्र 4.22 'अनावृतिः शब्दात् अनावृतिः शब्दात'— मुक्तावस्था में जीव को ब्रह्मारधना की आवृति नहीं करनी पड़ती । व्यास मुनि जी ने इस दर्शन में मुख्यतः ईश्वर की ही चर्चा की है । मीमांसा दर्शन में निष्काम भाव से किए गए यज्ञादि शुभ कर्मों को मुक्ति का साधन बताया गया है ।

वैदिक दर्शन ही अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करने में समर्थ हैं । यही दर्शन ईश्वर जीव प्रकृति के यथार्थ रूप को बतलाकर विवेक वैराग्य को उत्पन्न करने वाले हैं मोक्ष प्राप्ति उनका मुख्य प्रयोजन है ।

मुक्ति और मुक्ति के साधनों सम्बन्धी वैदिक दर्शनों के विचार जानने के पश्चात् हम वेद में वर्णित मुक्ति के साधनों की चर्चा करते हैं । वेदों उपनिषदों में मुक्ति के साधन संक्षेपतः इस प्रकार हैं :-

1. विद्या-अविद्या का यथार्थज्ञान
2. योगाभ्यास
3. परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन
4. उत्तम कर्म
5. सत्संग
6. विवेक

8. षट् सम्पति
9. मुमुक्षुत्व की भावना
10. श्रवण चतुष्टय
11. मैत्री चतुष्टय
12. राजसिक तामसिक गुणों का त्याग ।
13. अभ्यास
14. अनुबन्ध चतुष्टय

7. वैराग्य

15. दिनचर्या

1. **विद्या-अविद्या का व्यवहारिक ज्ञान :–** यजुर्वेद के मन्त्र 40.14 में कहा गया है :–

> विद्यां च अविद्यां च यस्त द्वेदोभ्यंꣳ सह ।
> अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

अर्थात जो मनुष्य विद्या और अविद्या को साथ साथ जानता है वह अविद्या अर्थात कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है । दर्शनों में अविद्या को सब दुःखों का, बन्धनों का मूल कारण बताआ है परन्तु इस मन्त्र में अविद्या को अच्छे अर्थ में लिया गया है । यहाँ अविद्या का अर्थ मिथ्या ज्ञान न करके कर्म और उपासना अर्थ किया है और विद्या का अर्थ शुद्ध ज्ञान किया है। मन्त्र का भावार्थ है कि शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना से जीव जन्म मरण के दुःखों से तर के, छूट के अमृत को मोक्ष को प्राप्त होता है ।

शुद्ध ज्ञान का अर्थ है – ईश्वर, जीव, प्रकृति के गुण कर्म स्वभाव व उनके परस्पर सम्बन्ध को ठीक-ठीक जानना । ज्ञान प्राप्ति के साधनों (सत्संग, स्वाध्याय, प्रमाण) व अवस्थाओं (अभावात्मक, संशयात्मक, भ्रमात्मक, निश्चयात्मक, दृढ़ात्मक) के प्रति सजग रहना ।

शुद्ध कर्म का अर्थ है – ईश्वर, जीव व प्रकृति के गुण, कर्म, स्वभाव को ठीक-ठीक जानकर तदनुसार सब कार्य करना । मन

वाणी व शरीर से किए कर्म सकाम व निष्काम दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जहाँ तक हो सके निष्काम कर्म करना अर्थात कर्म के फल की इच्छा न रख कर कार्य करना। भौतिक ज्ञान-विज्ञानं द्वारा शारीरिक मानसिक कष्टों को, दुखों को दूर करना। अध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान द्वारा आत्मा को लक्ष्य तक पहुँचाना।

शुद्ध उपासना का अर्थ है - व्यवहार काल में ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना और ध्यान काल में केवल और केवल ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का चिन्तन करना। पाँच प्रकार की वृत्तियों को रोकना।

कर्म और उपासना अविद्या इसलिए है कि यह बाह्य और अन्तर क्रिया विशेष का नाम है, ज्ञान विशेष नहीं है। इस मन्त्र में यहां पवित्र ज्ञान, पवित्र कर्म, पवित्र उपासना से मोक्ष प्राप्ति बताया है वहां उसका यह अर्थ भी निकलता है कि अपवित्र ज्ञान, अपवित्र कर्म व अपवित्र उपासना से जीव बन्धन में आता है। योगदर्शनकार ने अविद्या से दूसरा अर्थ लिया है। सार दोनों का एक ही है कि अविद्या अर्थात् मिथ्याज्ञान को दूर करना चाहिए। ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, कर्म, योग, अपवर्ग, आदि के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिए। मन वाणी शरीर से कोई बुरा कार्य न करें, उपासना ठीक प्रकार से करें, पाषाण पूजा आदि के भ्रम जाल में न फंसे तो मुक्ति

हो सकती है । प्रकृति से बने पदार्थों को अनित्य, अपवित्र, जड़ और दुःख रूप जान कर उनके प्रति राग को दूर कर ईश्वर के प्रति प्रेम को दृढ़ करें । यथार्थ ज्ञान/तत्व ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीनों प्रमाणों का प्रयोग निरन्तर करता रहे, किसी प्रकार का संशय उठे तो उसे शीघ्र इन प्रमाणों द्वारा दूर करे, सत्संग, स्वाध्याय भी निरन्तर करता रहे । कितना भी खाओ पीओ आत्मा में तो बूंद भी प्रवेश नहीं करती फिर क्यों भोगों के लिए दौड़ धूप करना व स्वाद ले ले कर खाना ।

मोक्ष के लिए तीन प्रकार के अधिकारी होते है :-

उत्तम अधिकारी - जो संसार में दुःख ही दुःख देखते हैं ।

मध्यम अधिकारी - जो संसार में दुःख-सुख दोनों देखते हैं।

निम्न अधिकारी - जो केवल मोक्ष के आनन्द को देखते हैं ।

सूक्ष्म रूप से अविद्या जन्य व्यवहार बना रहता है अर्थात कामनाएं, वासनाएं, ऐषणाएं, राग, द्वेष, काम, क्रोध, प्रतिशोध की भावनाएं अवसर पाते ही सिर उठा लेती हैं । कई कई प्रकार से रूप धारण कर हमें अपना शिकार करने को तत्पर रहती हैं, कुसंस्कार शिकारी कुत्तों की तरह पीछा करते रहते हैं । सूक्ष्म रूप से मान सम्मान की इच्छा बनी रहना, स्वाद लेकर खाना, लौकैषणा व वितैषणा ही है। इन्द्रियों के भोग ही सब दुःखों व बन्धनों का कारण हैं ऐसे विवेक को दृढ़ करना विद्या है । इसकी उपेक्षा कर भोगों के प्रति आकर्षण बनाए रखना अविद्या है । विद्या उसे कहते हैं जिसके जानने से मनुष्य का रूपांतरण हो जाए, क्रान्ति हो जाए, शब्द जाल में न अटका रहे व सब दुःखों से छूट कर मोक्ष हो जाए ।

2. **परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन** – परमेश्वर की सब

आज्ञाएं वेदादि शास्त्रों में वर्णित हैं उनको जानकर तदनुसार आचरण करे । सर्वन्तर्यामी परमेश्वर हर पल अपनी आज्ञाएं देता रहता है । बुरे कार्य करते भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करता और अच्छे कार्य करते निर्भयता, उत्साह, प्रसन्नता उत्पन्न करता रहता है, अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार ही हम अपने सब कार्य करें तो ही मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं ।

3. **योगाभ्यास** (क) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का निरन्तर, विद्यापूर्वक, तपपूर्वक ब्रह्मचर्यपूर्वक, श्रद्धापूर्वक दीर्घकाल तक अभ्यास करना ।

(ख) चित्त की वृतियों का निरोध करना । प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति आदि वृतियों का ध्यान काल में रोकने का निरन्तर अभ्यास करना । कलिष्ट - अकलिष्ट सब प्रकार की वृत्तियों का निरोध करना ।

(ग) कुसंस्कारों को दबाने का अभ्यास करना ।

(घ) विभूतियों व सिद्धियों से प्रभावित न होने का अभ्यास करना।

(ङ) प्रत्येक सांसारिक सुख में चार प्रकार का दुःख-परिणाम, ताप, संस्कार, गुण वृत्ति विरोध दुःख देखने का अभ्यास करना ।

(च) प्रत्येक वस्तु के कार्य रूप के साथ साथ उसके कारण रूप के चिन्तन का अभ्यास करना, उसकी अनित्यता का, उत्पत्ति प्रलय को स्मरण रखने का अभ्यास करना।

इन सबमें महत्वपूर्ण महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योग के आठ अङ्ग हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :-

i) यमः अहिंसासत्यास्तेब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः (यो द० २-३०)

(क) अहिंसा — शरीर, वाणी तथा मन से सब काल में समस्त प्राणियों के साथ वैरभाव छोड़कर प्रेम पूर्वक व्यवहार करना। न्याय और धर्म की रक्षार्थ संघर्ष करना या दण्ड देना-दिलाना भी अहिंसा है ।

(ख) सत्य — सदैव सत्य और प्रिय बोलना ।

(ग) अस्तेय — किसी प्रकार की चोरी आदि न करना, बिना पूछे किसी दूसरे की वस्तु का प्रयोग न करना । किसी के अधिकारों का हनन न करना ।

(घ) ब्रह्मचर्य — मन व इन्द्रियों को वश में रखना

(ङ) अपरिग्रह — आवश्यकता से अधिक वस्तुओं व विचारों का संग्रह न करना । इन यमों से उपासना का बीज बोया जाता है।

ii) नियम — शौच सन्तोष तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः (योग द. 2-32)

(क) शौच — प्रतिदिन व्यायाम, योगासन, स्नान, अल्प मात्रा में शुद्ध सात्विक भोजन, उपवास, सत्संग, यज्ञ आदि से मन वाणी शरीर और वातावरण को शुद्ध करना ।

(ख) सन्तोष — अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूर्ण परिश्रम करना, उसका जो भी फल मिले उसमें संतुष्ट रहना ।

(ग) तप — भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, लाभ-हानि, मान-अपमान, निन्दा स्तुति, हर्ष शोक, उतार-चढ़ाव आदि में सम रहना, विचलित न होना, तितिक्षु बनकर रहना, तपस्वी बनकर रहना, धर्ममार्ग पर अडिग रहना ।

(घ) **स्वाध्याय** — मोक्ष आदि विषयक शास्त्रों का अध्ययन करना, आत्म निरिक्षण करना व ओम् नाम का जप करना ।

(च) **ईश्वर प्रणिधान** — ईश्वर के बेजोड़ उपकारों, नियमों व व्यवस्था को देखकर उस पर दृढ़ विश्वास रखना, उससे सर्वाधिक प्रेम करना, उसके प्रति समर्पित रहना । वह जिस हाल में रखे सदैव प्रसन्न रहना । ईश्वर प्रणिधान व तीव्र लग्न से शीघ्र समाधि प्राप्त होती है । इनसे उपासना में बड़ी सहायता मिलती है ।

iii) **आसन** — **स्थिर सुखमासनम् (यो द. 2-46)**- जिस स्थिति में बिना हिले डुले सुखपूर्वक ईश्वर का ध्यान किया जाए। समस्त चेष्टाओं को समाप्त कर अनन्त ईश्वर में ध्यान करने से आसन की सिद्धि होती है । आसन दृढ़ होने पर उपासना में परिश्रम नहीं करना पड़ता ।

iv) **प्राणायाम्** — **तस्मिन्सति श्वास प्रश्वांसंयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः (यो. द. 2-49)** आसन के सिद्ध होने पर मन की चंचलता को रोकने के लिए विधिपूर्वक विचार से यथा शक्ति श्वास-प्रश्वास की गति को रोकने की क्रिया का नाम प्राणायाम है । पतञ्जलि जी ने वाह्य, आभ्यातर, स्तम्भवृति एवं वाह्य आभ्यांतर-विषयक्षेपी ये चार प्रकार के प्राणायाम बताएं है । इनसे प्राण वश में आते हैं । प्राण के वश में आने से मन वश में आता है ।

v) **प्रत्याहार** — **स्वविषय असम्प्रयोगे चित स्वरूप अनुकार इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः (2.54) स्वविषय असम्प्रयोगे** - अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न रहने पर चितस्वरूप अनुकार

इव-चित्त के स्वरूप जैसा हो जाना या रूक जाना । इन्द्रयानाम- इन्द्रियों का प्रत्याहार कहलाता है । मन के रूक जाने पर इन्द्रियां शांत होकर अपना कार्य बन्द कर देतीं है । इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देना अथवा विषयों का त्याग कर देना प्रत्याहार है । कछुए की तरह इन्द्रियों को अन्तरमुखी करके रखना ।

vi) **धारणा — देशबन्धः चितस्य धारणा (यो.द.3.1)** - ईश्वर का ध्यान करने के लिए आँखें बन्द कर मन को हृदय, नाभि, मस्तक आदि किसी एक स्थान पर स्थिर कर लें ।

vii) **ध्यान — तत्र प्रत्यैयकतानता ध्यानम् (यो.द. 3.2)** - ध्यान वाले स्थान पर एक ईश्वर के ज्ञान का प्रवाह बना रहना। ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव का किसी वेद मन्त्र या वाक्य आदि के द्वारा चिन्तन करना । बीच में अन्य किसी विषय को न उठाना ।

viii) **समाधि — तदेव अर्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यम् इव समाधिः (यो.द.3.3)** - वह ध्यान ही केवल वस्तु (ईश्वर) के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अपने स्वरूप से रहित हुआ सा समाधि कहलाता है । इसमें ईश्वर के ज्ञान, बल व आनन्द की प्राप्ति होती है और यही ईश्वर साक्षात्कार है। इसका दीर्घकाल तक, निरन्तर, धैर्यपूर्वक, ब्रह्मचर्यपूर्वक, श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से साधक धीरे-धीरे मोक्ष का अधिकारी बन जाता है । ध्यान और समाधि में इतना ही अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से जिस चीज का ध्यान करता हैं, वे तीनों विद्यमान रहते हैं । परन्तु समाधि में केवल

परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेदभाव नहीं रहता । उपासना के आठों अङ्गों का ठीक ठीक पालन करने से मन निर्मल होता है, विवेक वैराग्य बढ़ता है, अविद्यारूपी दोष दूर होते हैं । धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों के मेल से ईश्वर में मग्न हो जाने को संयम भी कहते हैं ।

4. **उत्तम कर्म** — गरीबों, अनाथों, विधवाओं, रोगियों की यथाशक्ति सहायता करना, अन्धविश्वासों व पांखडों को दूर करना, वेदादि शास्त्रों का प्रचार करना, निःशुल्क साहित्य वितरण करना, लेख, प्रवचन आदि से स्कूलों, कालिजों व अन्य सभाओं में सत्य का प्रचार करना, योगाभ्यास की कक्षाएं चलाना, प्रतिदिन पाँच महायज्ञ- ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), देवयज्ञ (हवन) बलिवैश्वदेवयज्ञ (पशुपक्षियों की सेवा करना), अतिथियज्ञ, पितृयज्ञ श्रद्धापूर्वक करना। समर्था हो तो बड़े-बड़े यज्ञ करना अथवा समर्थों को इसके लिए प्रेरित करना, विदेशी वस्त्रों, खान पान को छोड़ना छुड़वाना ।

5. **सत्संग**— सच्चे ऋषि मुनियों, सन्तों, महात्माओं, फकीरों, साधकों, धार्मिक विद्वानों का अधिक से अधिक संग करना, उनसे वार्तालाप करना, उनके प्रवचन कराना ताकि धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान हो सके, सब शंकाए दूर हो सकें, शरीर के पाँच कोषों, पाँच अवस्थाओं, अष्ट चक्रों व नव द्वारों का परिज्ञान हो सके । शरीर रचना का विशेष ज्ञान होने पर उसके प्रति आकर्षण आसक्ति घटती है और जीवात्मा को इन सब से पृथकत्व की अनुभूति होती है । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

(क) पांच कोष :- (i) अन्नमय-कोष- त्वचा से लेकर अस्थि पर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है (Skin, muscles, bones, nerves, arteries, blood, semen all are made up of earth and water elements in Anatomy)

(ii) प्राणमय कोष (Physiology) — क्रिया विज्ञान एवं विभिन्न शक्तियों का परिज्ञान व महत्व जानना ताकि शरीर जो मोक्ष प्राप्ति का प्रथम साधन है उसकी उचित देखभाल साधक स्वयं कर सके। शरीर में पांच प्रकार की शक्तियां (vital forces) कार्य करती हैं। ये हैं- प्राण (expiratory force) जिसकी सहायता से अशुद्ध वायु फेफडों से बाहर जाती है, अपान (inspiratory force) जिसकी सहायता से शुद्ध वायु बाहर से भीतर फेफडों में जाती है, समान (Circulatory force) जिसकी सहायता से विभिन्न ग्रन्थियों से रस एवं रक्त एक अङ्ग से दूसरे अङ्ग तक जाते हैं, उदान (Glossopharyngeal force) जिसकी सहायता से भोजन भोजन नली से होतां हुआ अमाशय तक जाता है, व्यान (motor-muscular force) जिसकी सहायता से जीवात्मा सब चेष्टाएं करता है। कुछ विद्वानों का मत है कि उदान प्राण सिर से कण्ठ तक कार्य करता है, प्राण कण्ठ से हृदय तक, समान हृदय से नाभि तक, अपान नाभि से पैर के अंगूठे तक और व्यान समस्त नस नाडियों में काम करता हैं ? इसके अतिरिक्त पांच उपप्राण हैं :- नाग (Belching power, डकार), कूर्म्म (Twinkling Power), कृंकल

(hunger), देवदत्त (Yawning), धनञ्जय (decomposing power)

(iii) **मनोमय कोष (Mento-motor system)** — जिसमें प्राण के साथ अहंकार (will) वाक् (voice), पाद (feet), पाणि (hands) पायु (excretory organ rectum etc.) उपस्थ (renerative organs) अर्थात पांच कर्मेन्द्रियां हैं ।

(iv) **विज्ञानमय कोष (Intellectual system)** — जिसमें बुद्धि चित्त के साथ पांच ज्ञानेन्द्रियां आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आती हैं और जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है ।

(v) **आनन्दमय कोष (Spiritual System)** — जिसमें प्रीति, आनंद प्रसन्नता और कारण रूप प्रकृति है ।

(ख) **शरीर की तीन अवस्थाएँ :-** जागृत, स्वपन, सुषुप्ति ।

(ग) **शरीर के प्रकार :-** स्थूल, सूक्ष्म जो सतरह तत्वों का समुदाय है इसके दो भाग हैं, कारण जो प्रकृति सत्व, रज, तम से बना है इसी से सुषुप्ति अर्थात गाढ़ निद्रा होती है, तुरीय = जिसमें समाधि अवस्था में परमात्मा के आनन्द में मग्न हो जाता है ।

अष्ट चक्र नव द्वारा इन चक्रों के बारे में विद्वानों में कुछ मतभेद है अथर्ववेद के मंत्र का प्रमाण इसमें कुछ विद्वान देते हैं तो कुछ इस मन्त्र का अर्थ योग के आठ अंग करते हैं । हमारा अपना मत है कि रीढ़ की हडडी के भीतर स्थित सुषुम्ना नाडी का एक सिरा मस्तिष्क से तो दूसरा सिर पुच्छास्थि से जुड़ा होता है उसके उपर कुछ स्थानों पर ज्ञानवाहक (sensory) तथा गतिवाहक (motor) सूत्रों के पूंज

होते हैं हठयोगियों ने इन पूंजों का नाम चक्र दे रखा है इनमें फास्फोरस की अधिकता होती है इसी कारण इनमें चमक होती है जो प्राणायाम के द्वारा तीव्र हो जाती है कुछ साधकों को यह चमक प्रकाश के रूप में अनुभव होती है । चीरफाड कर देखें तो इन पुजों को देखा नहीं जा सकता । यहाँ पुंजों या चक्रों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :- मलद्वार के पास मूलाधार चक्र, मूत्राशय के पास स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि के पास मणिपुर चक्र यकृत के पास मेरुदण्ड के दोनों ओर सूर्य चक्र, हृदय के पास अनाहत चक्र, कण्ठ के पास विशुद्ध चक्र, भ्रकुटि के मध्य आज्ञा चक्र, सिर में चोटी के नीचे सहस्रार चक्र । नव द्वार- दो आंखें, दो कान, दो नासिकाछिद्र, मुख, मूत्रद्वार, मलद्वार हैं। अथर्ववेद का मन्त्र है :—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या । तस्यां हिरणययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः । (10.2.31 अथर्ववेद)

अर्थ :— आठ चक्रों, नौ द्वारों व नौ इन्द्रियों वाली यह पूर(मनुष्य देह) अयोध्या (अजेय) है । तस्याम् (उसमें) हिरण्ययः स्वर्गो (ज्योति से पूर्ण स्वर्ण का) कोष (भण्डार = आत्मा) हैं, वह ज्योतिषा आवृताः (ब्रह्म से ओतप्रोत है)

शरीर सम्बन्धी यह सब ज्ञान-विज्ञान प्रत्येक साधक को होना चाहिए ताकि वह इनको व्यायाम, आसन, प्राणायाम, उचित, आहार आदि से स्वस्थ रख सके । आयुर्वेद का भी आवश्यक ज्ञान-विज्ञान साधक को होना चाहिए । शरीर ठीक है, स्वस्थ है तो ही मुक्ति के लिए प्रयास किया जा सकता है । कहा भी हैः- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात धर्म का प्रथम साधन शरीर ही है (कालिदास द्वारा रचित महाकाव्य कुमार सम्भवम्) । सत्संग के द्वारा अर्थात

विद्वानों के संग से शरीर के कोषों, अवस्थाओं, प्रकारों, चक्रों आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी निरन्तर प्राप्त करते रहना चाहिए। अष्टचक्रों का मानना या न मानना मोक्ष प्राप्ति में बाधक नहीं है।

6. **विवेक** — मुमुक्षु प्रत्येक कार्य अत्यन्त सोच विचार कर करे, स्वयं को कोषों, अवस्थाओं मन, बुद्धि आदि से पृथक मानें, पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म स्वभाव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करे। विवेक में मुख्यतः निम्न बातें है :-

ईश्वर के यथार्थरूप को जानना विवेक है। उसको साकार रूप में मानना, उसकी मूर्ति बनाकर प्राण प्रतिष्ठा करना, उसका अवतार मानना आदि अविवेक है। ईश्वर का यथार्थ रूप है :- ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता, सृष्टिधर्ता, सृष्टिहर्ता, मोक्ष दात्ता, अद्वैत क्लेशों, सकाम कर्मों, कर्म फलों, कर्म संस्कारों से रहित, सर्वज्ञ, कालातीत, गुरुओं का गुरु और ओ३म् नाम वाला है। उसके इस नाम का अर्थ सहित जप करने से सब विध्नों-उपविध्नों का नाश होता है और उसका साक्षात्कार होता है। स्थान नहीं घेरता, आकार-प्रकार-लिंग व भार रहित है, शुद्ध बुद्ध (सर्वज्ञ चेतन) मुक्त है।

जीवात्मा सत, चित, अनेक, अजर, अमर, अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान, अनादि, परिच्छिन, पुनर्जन्मी, अतिसूक्ष्म, आकार-प्रकार, रंग-रूप-लिंग-भार रहित है और चेतन होने के कारण स्थान नहीं घेरता। शुद्ध (एकतत्व/संघात), बुद्ध अल्पज्ञ (चेतन), मुक्त (अन्य द्रव्यों में मिश्रित न होने वाला, कर्म करने में स्वतंत्र फल भोगने में

परतन्त्र व अणुरूप है। मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखता है अर्थात सब दुःखों से छूटना चाहता है, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, निमेष, उन्मेश गमन, मनन, इन्द्रिय, अन्तर्विकार एवं चौबीस प्रकार के स्वाभाविक गुणों वाला है ।

7. **प्रकृति** — अपनी साम्यवस्था (Balanced State) में निष्क्रय, सत्व, रज, तम तीन प्रकार के गुणों (कणों) वाली, अनादि अनेक, अजर, अमर, जड़ अतिसूक्ष्म, अणुरूप, अदृश्य स्वभाव वाली है । ये तीन प्रकार के गुण (कण) क्रमशः प्रकाशशील, क्रियाशील, प्रकाश-क्रिया से रहित स्थिति स्वभाव वाले हैं । ऐसा अनुमान किया जाता है कि सत्व-कण घनात्मक (Positive) आवेश वाले, रज कण ऋणात्मक (Negative Charge) आवेश वाले और तम कण बिना किसी अवेश के होते हैं । सत्व व रज कणों का आवेश उनकी बाहरी सतह पर न होकर अन्दर की सतह पर होता है अर्थात दोनों पर आवेश अन्तर्मुखी होते हैं जिस कारण उनका आपस में आकर्षण विकर्षण नहीं होता । जब परमात्मा सृष्टि बनाने का संकल्प करता है तो आवेश बाहरी सतह पर आ जाते हैं और उनका आपस में आकर्षण-विकर्षण होने से संयोग होना प्रारम्भ होता है जिससे इलैक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन बनने प्रारम्भ होते हैं उनसे फिर एटम, मालिक्यूल (Molecule) बनते बनते विभिन्न पदार्थों का निर्माण होना प्रारम्भ हो जाता है । शास्त्रीय भाषा में इस प्रक्रिया को महतत्व, अंहकार, सूक्ष्म भूत, स्थूल भूत आदि कहा गया है । प्रकृति नित्य है परन्तु प्रकृति से बने सब पदार्थ अनित्य हैं । जब तक प्रकृति है कोई आकर्षण नहीं, संघात होने पर, नाम रूप होने पर उनमें आकर्षण राग उत्पन्न होने लगता है जो मोक्ष में बाधक है ।

- अष्टांग योग का गम्भीरता से पालन करना विवेक है ।
- संसार को अनित्य, अपवित्र, अनात्म, (जड और जीव के स्वामीपन से रहित), और दुःख रूप है ऐसा मानना जानना विवेक है ।
- काम-क्रोध,लोभ, मोह, अंहकार, वासनाओं, ऐषणाओं को छोड़ना विवेक है ।
- सब कार्य सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म को जान कर करना विवेक है ।
- मोक्ष के लिए गंभीरता से प्रयास करना विवेक है ।
- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना विवेक है ।
- साध्य-साधक-साधन के परस्पर सम्बन्ध को जानना विवेक है ।
- उपरोक्त सब बातों का न मानना, विपरित मानना अथवा मानकर तदनुसार आचरण न करना अविवेक है, अविद्या है, अज्ञानता है, मूर्खता है, नास्तिकता है ।
- विवेक प्राप्ति के मुख्य साधन हैं स्वाध्याय, सत्संग, प्रमाण, आत्मनिरीक्षण ।

8. **वैराग्य** — उपरोक्त प्रकार से विवेक या विवेक ख्याति होने पर देखे सुने विषयों से राग, आसक्ति हट जाती है और मन पर पूरा नियत्रंण हो जाता है।इस स्थिति का नाम अपर-वैराग्य है इस स्थिति के दृढ़ होने पर सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होने लगती है जिसमें क्रमशः स्थूल भूतों, सूक्ष्म भूतों, इन्द्रियों, आत्मा व प्रकृति का अनुभव होने लगता है साक्षात्कार होने लगता है । पतञ्जलि ऋषि ने इन पदार्थों के साक्षात्कार के आधार पर इस सम्प्रज्ञात समाधि का वितर्क,

विचार, आनन्द, अस्मिता चार भागों में वर्गीकरण किया है। प्रारम्भिक अवस्था में वस्तु के शब्द, अर्थ व ज्ञान का अनुभव होता है पश्चात् वस्तु के अर्थमात्र का आभास शेष रह जाता है। सत्वगुण की प्रधानता का व आत्मा के साक्षात्कार का सुख अनुभव होता है, इसके निरन्तर अभ्यास से अध्यात्म प्रसाद एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। एक समय आता है जब मुमुक्षु को सत्व गुण से मिलने वाले सुख की भी अनिच्छा होने लगती है। इस अवस्था का नाम पर-वैराग्य है जो आगे जाकर असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात ईश्वर का साक्षात्कार कराती है अर्थात ईश्वर के ज्ञान, बल व आनन्द की प्राप्ति होने लगती है। इस अवस्था का निरन्तर अभ्यास करते रहने से मुमुक्षु जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। शरीर के छूटने पर वह नितान्त मुक्त हो जाता है।

वैराग्य को दृढ़ करने के लिए निरन्तर वैरागियों का संग, शरीर व सृष्टि की अनित्यता का चिन्तन, प्रलयावस्था का चिन्तन, एक सौ एक प्रकार से मृत्यु का चिन्तन, मनुष्य जन्म के महत्व व लक्ष्य का चिन्तन, मौन, एकान्तवास, का चिन्तन करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैरागी साधु-सन्तों की जीवनियों का अध्ययन, वैराग्य श्लोकों का पाठ, संसार में अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार मृत्यु और चार प्रकार के दुःखों का चिन्तन भी बड़ा सहायक है। वैराग्य मोक्ष प्राप्ति में बड़ा साधन है। महात्मा बुद्ध, महर्षि दयानंद, शंकराचार्य आदि महापुरुषों को संसार में दुःख, मृत्यु, बुढापा रोग आदि देख कर ही तीव्र वैराग्य हो गया और अपना जीवन सफल कर गए। जरा सोचिए, जिस धन, सम्पति, राजपाट, पद प्रतिष्ठा आदि को पाने क लिए आप दिन रात भाग दौड़ कर रहे हो, ईश्वर को भुला रहे हो, पाप भी कर लेते हो वे सब कुछ तो इन महापुरुषों को जन्म

से ही प्राप्त था, सब ढोकर मार कर चल दिए और आप उसी के अर्जन-रक्षण में लगे हो । करोडों वर्षों से तुम मनुष्य जन्म पाकर अपनी शक्ति घर, परिवार, धन सम्पति आदि को बनाने में खर्च कर रहे हो, बार बार वही पढाई लिखाई, वही खेल कूद, वही खानपान, वही नौकरी, वही राग द्वेषः अब तो अपनी पूरी शक्ति अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने में लगा दो, जितनी शेष है उसको ही लगा दो। आधुनिक स्कूल कालिजों की पढाई-लिखाई मोक्ष प्राप्ति में बाधक है । पूरा जीवन वेदादि शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन और योगाभ्यास में क्यों नहीं लगा देते ? मृत्यु रूपी बिल्ली ताक में बैठी है और तुम आँखें मूंद करके बैठे हो और सोचते हो कि बिल्ली तुम्हें देख नहीं रही । अब जाग जाओ, एक सैनिक की तरह लक्ष्य प्राप्ति में पुरुषार्थ करने लग जाओ ।

पुराने संस्कारों के प्रति सजग रहो, उनके शिकार मत होवो। प्रतिक्रिया करने से संस्कार पड़ते हैं, कैसी भी संवेदना हो प्रतिक्रिया मत करो, नये संस्कार मत बनने दो, सब संस्कारों को काटना है बस यही उदेश्यय रखो। भोज के अपने चाचा मुञ्ज को कहे वचन 'सब राजा महाराजा सब राज पाठ यहीं छोड कर चले गए लगता है तुम साथ अवश्य ले जाओगे' याद करो । भर्तृहरि राजा द्वारा अपनी रानी पिगंला को अमर फल देने की कहानी याद करो, कैसे अमरफल कई प्रेमियों के हाथों से गुजरता हुआ पुनः राजा के पास एक वैश्या लेकर आई, उस बुद्धिमान कन्या को याद करो जिसने दस्त लगने की दवा लेकर अपनी सारी सुन्दरता को घडों में बंद कर दिया और उन्हें रेशमी रूमालों से ढक दिया और उस पर मोहित एक राजकुमार को वैराग्य का पाठ पढ़ाया, महात्मा मंगतराम के शब्दों को याद करो 'यह शरीर अपूर्ण है, इसके भोग अपूर्ण हैं, यह संसार अपूर्ण है, इस

अपूर्ण शरीर और अपूर्ण संसार में पूर्णताई की खोज करना मूर्खता है, यह बात तू आज समझले, दशं वर्ष बाद समझ लेना, या चार जन्म वाद समझ लेना, आखिर यह ही समझना पडेगा । क्यों अपने सफर को लम्बा करता है ? उठ जाग और अपने कल्याण के मार्ग पर बढ़ चल' तुलसीदास की पत्नी की फटकार भूल गए- 'जितना प्रेम तुम मल मूत्र रक्त मज्जा पर चढी चमडी को करते हो इतना यदि ईश्वर से करते तो तुम्हारे सब दुःखों का अन्त हो जाता' कपिल मुनि का सूत्र पितापुत्र वत उभर्योर्दुष्टत्वात् (4.4) को याद करो कि इधर पिता की मृत्यु हो गई तो उधर उसी के पुत्र का जन्म हुआ है तो नवजात बालक का पिता सोचता है कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी इस नवजात पुत्र के पुत्र होगा, जैसे सर्प शरीरस्थ जीर्ण केचुंली को हेय समझकर त्याग देता है वैसे ही विवेकी दीर्घकाल तक भोगी हुई सृष्टि को विवेक-वैराग्य से त्याग कर सुखी होता है, जो वस्तु मोक्ष का साधन नहीं है उसके चिन्तन में न पड़ो क्योंकि वह बन्धन का कारण है जैसे राजा भरत हिरण के बच्चे के चिन्तन से बन्धन में फंस गया। नेचिकेता बालक का वैराग्य क्या तुम्हें कुछ प्रेरणा नहीं देता । एक छोटे से बालक ने राजा के पुत्र ने भोगों की निःसारता को जानकर उनसे मुंह मोड़ लिया, सब चक्रवृति राज्य, सैकड़ों वर्षों की आयु, अप्सराओं, पुत्र पौत्रों, हाथी घोडे यहाँ तक कि स्वर्ग के राज्य को भी ठुकरा दिया, तुम क्या उससे कम बुद्धि रखते हो, तुम उस जैसे पात्र, उस जैसा वैराग्य क्यों नहीं उत्पन्न करते ?

असली भाग्य तो विषयों से वैराग्य होना है केवल वैराग्य ही भय से रहित हैं।मछली और पतंगा तो मन्दबुद्धि हैं जो कांटे में फंसे मांस-और दीपक का शिकार हो जाते हैं परन्तु तुम मनुष्य होकर काम भोगों का शिकार होकर करोड़ों वर्ष तक जन्ममरण का दुःख

भोगते हो । महासागर में जैसे दो काष्ठ इकट्ठे होते हैं बिछुड़ते हैं ऐसे ही सब रिश्ते नाते बनते बिगड़ते रहते हैं, हजारों माता पिता और सैकडों पुत्र पुत्रियां पत्नियां हुईं, अनन्त सगे सम्बन्धी हो चुके उनका कौन हुआ और किसके तुम हुए ? जब बुढ़ापे में शरीर जीर्ण हो जाता है तो कुछ योगाभ्यास नहीं हो पाता और न घर में कोई उसकी बात पूछता है । इसलिए समय रहते चेत जाओ यह मनुष्य जन्म फिर पता नहीं कब मिले । इन्द्रियों के भोग ही दुःख का कारण हैं आवागमन का कारण हैं इस तथ्य को अच्छी तरह आत्मसात कर लो, भोगों को अब छोड़ भी दो । योगी जन ऋषि मुनि केवल पत्तों पर, जल पर साधना करते रहे । तुम्हारे कितने सम्बन्धी मित्र तुम्हारे देखते देखते संसार से चले गए तुम भी चलने की दहलीज पर खडे हो, तुम भी क्या ले जाओगे ? पद-प्रतिष्ठा, वाद-विवाद, भ्रमण आदि व्यर्थ के कार्यों में जीवन क्यों नष्ट करते हो, छोटी छोटी वासनाओं, कामनाओं की दलदल में तुम कब तक पडे रहोगे ? सांसारिक प्रपंचों में कब तक समय नष्ट करते रहोगे ? सारी पृथ्वी जल की रेखा से घिरा हुआ मिट्टी का छोटा पिण्ड है, आकाश गंङ्गा में एक रेत के कण के तुल्य है । सैंकडों राजा युद्धों द्वारा जहाँ-तहां उसके कुछ अंशों पर अपना प्रभुत्व प्राप्त कर इतराते हैं, इसके भोगों पर ऐसे भिन्नभिनाते रहते हैं जैसे मक्खियां मिठाई पर ।

जब कि हमें भोजन के लिए फल, पीने के लिए मधुर पानी, सोने के लिए पृथ्वी, पहनने के लिए पेडों की छाल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है तब हम धन, पद, स्वार्थ के मद में उन्मत इन्द्रियों वाले दुर्जनों के निरादर को क्यों सहें।

स्मरण करो आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व प्रलयरूपी रात्रि थी, घोर अंधकार था, शून्य आकाश था, मैं और मेरेपन का

कोई प्रश्न नहीं था, प्रकृति साम्यावस्था में बिखरी पड़ी थी, जीवात्माएं सुषुप्ति अवस्था में पडी थीं, बस अखण्ड एक रस परमात्मा था, यही स्थिति पुनः लगभग दो अढाई अरब वर्षों बाद आने वाली है, बीच के अन्तराल में कुछ समय के लिए ही सृष्टि नाम-रूप है इस बीच करोडों प्रकार की धन सम्पतियों को अपना-अपना कहकर, उनके लिए लड़ झगड़ कर मुकद्दमें कर सब समय व्यर्थ गवां दिया। इस अनित्य पदार्थों से कैसा मोह ? इस भूमि, मोह-माया, इस वासना रूपी भ्रम जाल से छूटने के लिए यत्न करो तभी सब दुःखों का अन्त होगा। वासना तृप्ति के लिए इतनी भाग दौड़ की परन्तु सब कुछ करके भी यह वासना रूपी अन्धकार कई गुणा बढ़ गया यह ही आश्चर्यजनक चक्र है।

वैराग्य यदि नहीं है तो वृति निरोध नहीं हो सकता और वृति निरोध के बिना समाधि व मोक्ष की ओर बढ़ा नहीं जा सकता। प्रतिकूलता में रुष्ट या खिन्न हो जाना विवेक वैराग्य में बाधक है। व्यङ्गात्मक या हंसी आने वाली भाषा बोलना विवेक वैराग्य में अत्यन्त हानिकर है। विवेक वैराग्य को दृढ़ करने के लिए बार बार विवेक वैराग्य की बातों का चिन्तन करो वरन् निश्चयात्मक ज्ञान भ्रम, संशय और अभाव में परिवर्तित हो सकता है।

जब घोर संकट आता है, साम्प्रदायिक दंगों व भूकम्प आदि की स्थिति में मृत्यु सिर पर नाचती है, जब शमशान घाट में प्रियजन को जलाते हो तब ही संसार निःसार दिखता है, तब ही परमात्मा का सदैव चिन्तन करने को मन करता है, तब जो वैराग्य उत्पन्न होता है उसको दृढ़ करो। सब बुरे कामों और दोषों से अलग रहो।

9. **षट्सम्पति** — सांसारिक जनों की अनेक प्रकार की सम्पतियां

होती है जिनमें भूमि, सोना, चांदी, पुत्र, पौत्र, पद, प्रतिष्ठा आदि प्रमुख हैं परन्तु एक मुमुक्षु का इन सम्पतियों से कुछ लेना देना नहीं ये सब तो उसके लिए भार रूप हैं उसकी असली सम्पतियां कुछ और ही हैं जितना वह इन सम्पतियों से सम्पन्न होगा उतना ही वह सफल होगा । ये सम्पतियां इस प्रकार हैं :—

- **शम** — अर्थात अपने आत्मा को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में लगाना ।
- **दम** — शरीर व इन्द्रियों को व्यभिचार आदि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रय आदि शुभ कर्मों में लगाना ।
- **उपरति** — दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से दूर रहना ।
- **तितिक्षा** — निन्दा, स्तुति, लाभ, हानि, हर्ष-शोक आदि को छोड़ मुक्ति के साधनों में लगे रहना ।
- **श्रद्धा** — वेदादि शास्त्रों व वैदिक धार्मिक विद्वानों, ऋषि-मुनियों के वचनों पर विश्वास करना ।
- **समाधान** — चित्त की एकाग्रता को दृढ़ करना, छोटे से छोटे कार्य को भी पूरी लग्न व एकाग्रता से करना ।

10. मुमुक्षुत्व की भावना — जैसे भूखे प्यासे व्यक्ति को अन्न जल के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता वैसे ही मुक्ति की इच्छा रखने वाले को सिवाय मुक्ति व उसको प्राप्त करने के साधनों के सिवाय कुछ अच्छा नहीं लगना चाहिए । इसके अतिरिक्त किसी और विषय जैसे समाज सुधार, खण्डन मण्डन, राजनीति, वाद-विवाद, प्रवचन, पार्टियों में आना जाना, रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन, समाचार पत्र आदि में रूचि नहीं लेनी चाहिए ।

11. श्रवण चतुष्टय — पढ़ी लिखी सुनी बात का चार प्रकार से विवेचन करे, ब्रह्म विद्या प्राप्ति के लिए आवश्यक चार बातों का ध्यान रखे :—

श्रवण — ध्यानपूर्वक सुनना, बाहरी विषयों से पूर्णतया मन को हटा कर विषय को ग्रहण करना।

मनन — पढ़ी सुनी बात पर एकान्त देश में बैठकर विचार करे, कुछ शंका हो तो प्रेमपूर्वक वार्तालाप से उसे दूर करे।

निदिध्यासन — सब शंकाओं को दूर कर निश्चय कर लेना कि यह विषय जैसा सुना था वैसा ही है ।

साक्षात्कार — अर्थात जैसा पदार्थ का गुण, कर्म, स्वभाव व स्वरूप हो उसे वैसा ही ठीक ठीक जान लेना और वैसे ही आचरण करना, उसे जीवन में पूर्णतया अपना लेना ।

12. मैत्री चतुष्टय — सांसारिक लोगों से व्यवहार करते समय चार बातों का ध्यान रखे—

(i) **मैत्री** — सुखी जनों से, सम्पन्न लोगों से, संस्थाओं से मित्रता बना कर रखना, उनकी आलोचना, उनका विरोध न कर उनसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करना । कुछ कमी या दोष दृष्टिगोचर होता हो अत्यन्त प्रेम से संकेत करना ।

(ii) **करूणा** — दुःखी जनों पर दया करना, यथाशक्ति उनके दुःख को कम करने - करवाने का प्रयास करना ।

(iii) **मुदिता** — पुण्यात्माओं से हर्षित होना। उनका पूरा मान-सम्मान करना ।

(iv) **उपेक्षा** — दुष्टात्माओं से न प्रीति और न वैर रखना, उनकी

बातों का बुरा न मानना, इसके लिए सद्बुद्धि की प्रार्थना करना ।

13. **तमोगुण — रजोगुण का त्याग** - तमोगुण अर्थात काम, क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद से दूर रहना । रजोगुण अर्थात ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप (अनियमत्तता) आदि को छोड़ना ।

14. **अभ्यास** — साधारण व्यक्ति या साधक प्रातःसायं एक एक घंटा ध्यान में बैठै परन्तु मोक्ष चाहने वाले को प्रातःसायं दो दो घंटे बैठने का अभ्यास करना चाहिए, समस्त सांसारिक वृतियों को रोक कर ईश्वर के ओम्नाम व उसके व स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शेष समय भी चलते-चलते, उठते-बैठते, सोते जागते ईश्वर का ही चिन्तन चलते रहना चाहिए । हर समय ईश्वर को अपने आगे पीछे, दायें-बाएं, ऊपर नीचे, अंदर बाहर, सर्वत्र जान कर व्यवहार करे । स्मरण रखे अभ्यास एक भीतरी खुदाई है जिसे सतत् जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है । एक ही जगह खोदते चलें जांएगें तो ही आपको जीवन के जल स्रोत मिलेंगें ।

15. **अनुबन्ध** — मुमुक्षु इन चारों बातों में अपने को बांध कर रखे :-

(i) **अधिकारी** — मुक्ति के सब साधनों को अच्छी प्रकार जानना, मानना और उनको पूर्णतया अपनाने का जो प्रयत्न करता है वही मोक्ष का अधिकारी है ।

(ii) **सम्बन्ध** — मुक्ति और मुक्ति के साधनों का वर्णन करने वाले सब वेदादि शास्त्रों और विद्वानों से सम्बन्ध बनाए रखना।

(iii) विषयी — पढने-पढाने, सुनने-सुनाने, लिखने आदि का एक ही विषय रखे-मोक्ष ।

(iv) प्रयोजन — अपने जीवन का बस एक ही मकसद, एक ही उद्देश्य रख कर चले ।

मुक्ति के इन साधनों में कुछेक महत्वपूर्ण बातों को बार-बार अन्य अन्य प्रकार से समझाने का प्रयास किया गया है । साधक स्मरण रखे कि वह एक बडे साहस का कार्य कर रहा है, साहस का मतलब होता है जो अभी अज्ञात में है उसके लिए प्रयास । भय का मतलब है जो ज्ञात है उसको पकड कर बैठ जाना । जितना ही वह आगे बढ़ता है उतना ही उसके पावों को खाई खंदको का सामना करना पड़ता है । जो मार्ग उधर जाता है वह एक ही अग्नि से प्रकाशित है— साधक के हृदय में जलने वाली अग्नि से ।

साधक जैसे जैसे मोक्ष की ओर बढने लगता है वह अत्यन्त सरल, नाजुक होने लगता है । छोटी सी घटना, वासना, ऐषणा उसे नष्ट कर डालती है । वासना या इच्छा का हल्का सा झोंका भी फूल जैसे हुए साधक को गिरा सकता है । मैं बडा पवित्र हूँ ऐसी भावना को लाना भी पाप करना है अभिमान की इतनी सी भावना से वह पाश्चाताप करता है । परन्तु आम आदमी के पाप इतने हैं कि उसे शर्म भी न आयेगी । मार्ग संकीर्ण हैं, ऊंचाई ज्यादा है और साधक नया औरं नाजुक है इस यात्रा पर । जरा सी भूल भयंकर हो सकती है जितना वह सिद्ध योगी के सानिध्य में रहेगा उतना उसके लिए अच्छा रहेगा, जितना मौन और एंकात में रहेगा उतना अच्छा रहेगा।

16. दिनचर्या — लक्ष्य को पाने के लिए दिनचर्या विशेष प्रकार की रखनी होगी । इस विशेष प्रकार की दिनचर्या के लिए आवश्यक है

कि पेट 24 घंटे हल्का रहे। ऐसा खानपान हो जिससे अंतड़ियों में मल न बने। अधिकतर तरल पदार्थ लें जैसे :—

(क) स्वच्छ जल लैची डाल कर लें, दो किलो जल उबाल कर रख लें और प्यास लगने पर आवश्यकतानुसार ले लें, जल में थोड़ा शहद डाल कर भी ले सकते हैं।

(ख) रस — ज्वारे का रस, गिलोय का रस, सफेद पेठे का रस, लोकी का रस, सेब, संगतरा, मौसमी, अनार, नारीयल पानी, गन्ने का रस, छाछ।

(ग) चाय — अमृतपेय तुलसी के 5-6 पत्ते डाल कर।

(घ) सूप — टमाटर सूप, लौकी सूप, चने का सूप, दाल का पानी।

(ङ) फल — तरबूज, खरबूजा, टमाटर, संगतरा, अंगूर, पपीता, आम।

(च) फूल पत्ते — सदाबहार, हार श्रृंगार, गुलाब, मरूआ, तुलसी, मेथी, पालक, पत्ता गोभी आदि पौधों के पत्ते व फूल।

अन्न, दूध, दालें, तला, भुना, लहसुन, प्याज, मसाले, भिंडी, अरबी, पनीर, ईगली, खट्टा, पूरी, परोंठे, खीर, हलवा, चीनी आदि न लें। किसी निर्जन स्थान पर साधना कर रहे हों तो सादा पानी, किसी वृक्ष के पत्ते, घास फल फूल कन्द आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। हो सके तो जल को छान कर पिआ जाए। अभक्ष्य पदार्थ सेवन करने वालों व छली कपटी लोगों के हाथ का ग्रहण न किया जाए। जहाँ तक हो सके ऐसा खानपान हो कि उसके कारण केवल मूत्र का ही त्याग करना पड़े और शरीर की आवश्यकता पूरी होती रहे। गाय का दूध भी थोडी मात्रा में बिना चीनी डाले प्रयोग

किया जा सकता है । इस प्रकार का खानपान रखने से दिनचर्या ठीक प्रकार से हो सकेगी । संक्षेप में दिनचर्या इस प्रकार हो —

- प्रातः 2 से 4 गायत्री मंत्र का अर्थ सहित जप ।
- प्रातः 4 से 5 भ्रमण करते हुए आर्यभाषा में स्तुति प्रार्थना उपासना, इसमें कुछ भजन, श्लोक व मन्त्रों का चिन्तन भी हो सकता है ।
- प्रातः 5 से 6 आसन, प्राणायाम, मालिश, शौच, स्नानादि।
- प्रातः 6 से 8 सन्ध्या, ध्यान, आत्मा पर संयम करके उस में ओत-प्रोत हो रहे ईश्वर की अनुभूति करना, बीच बीच में प्राणायाम आवश्यकता होने पर करना ।
- प्रातः 8 से 9 यज्ञ, प्रातःराश में अमृत पेय/गाय का दूध/लौकी या सफेद पेठे का रस, विश्राम । (अमृतपेय जड़ी बूटियों का सम्मिश्रण है और भारतीय योग संस्थान अथवा गुरुकुल चाय के रूप में उपलब्ध है)
- प्रातः 9 से 11 मोक्षादि शास्त्रों का अध्ययन मनन.....।
- 11 बजे फल या सब्जी का रस/सूप/गाय का दूध ।
- 11.15 से 12.15 ध्यान ।
- 12.15 से 2 विश्राम, आर्य पत्रिकायों का निरिक्षण, लेखनादि कार्य । आवश्यक लौकिक कार्य ।
- 2 से 4 गायत्री जप / शंका समाधान, अमृत पेय अथवा गाय का दूध ।

- सांय 4 से 5 भ्रमण करते हुए आर्य भाषा में स्तुति प्रार्थना उपासना, मन्त्र, भजन, श्लोक आदि का चिन्तन ।
- सांय 5 से 6 आसन, प्राणायाम शौच स्नानादि ।
- रात्रि 6 से 8 ध्यान.........
- रात्रि 8 से 9 प्रवचन श्रवण, भजन श्रवण ।
- रात्रि 9 से 2 विश्राम, विश्राम से पूर्व प्रार्थना मंत्र ।

आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन किया जा सकता है भोजनादि की, पेय पदार्थ की इच्छा न हो तो न लिया जाए। दिनचर्या करते हुए सदैव स्मरण रखेंकि उसके इर्द-गिर्द जो खाली स्थान सा दीखता है वह वास्तव में खाली स्थान नहीं है अनन्त गुणों से युक्त एक दिव्य चेतन पदार्थ ईश्वर है जो उसकी प्रत्येक गतिविधि को, विचार को जान रहा है। पर्वत पर वाहन चलाने वाले चालक की तरह बड़ी सावधानी से दिनचर्या का पालन करे। परम कर्त्तव्य समझ कर पुरुषार्थ करता जाए, ईश्वर के उपकारों का स्मरण कर उसके प्रेम में डूबा रह कर फल की इच्छा न करे वरन् यह भी सकाम कर्म हो जाएगा ।

मुक्ति के काल्पनिक साधन

वर्तमान में भिन्न-भिन्न मत मतान्तर वाले लोगों को आकर्षित करने के लिए बड़े सस्ते नुस्खे, सूत्र या उपाय कल्पित करते रहते हैं जिनके कारण मनुष्य वास्तविक उपायों से सर्वथा वंचित होकर मारा-मारा फिर रहा है अथवा अन्धकार में जीवन नष्ट कर रहा है। कुछ कपोल कल्पित साधन निम्न प्रकार हैं :—

- जैनी = मोक्षशिला, शिवपुर में जाके चुपचाप बैठे रहना ।
- ईसाई = चौथे आसमान में जाके आनन्द भोगना।
- मुसलमान = सातवें आसमान में जाके भोग-विलास करना ।
- वाममार्गी = श्रीपुर नामक स्थान पर जाके भोग-विलास करना ।
- शैव = कैलाश नामक स्थान पर जाके भोग-विलास करना ।
- वैष्णव = बैकुण्ठ नामक स्थान पर जाके भोग-विलास करना ।
- गोकुलिए गोसाईं = गोलोक नागक स्थान पर जाके भोग-विलास करना ।
- पौराणिक = सालोक्य, सानुज्य, साजुज्य, सामीप्य चार प्रवगर की मुक्ति मानते हैं ।
- वेदान्ति = ब्रह्म में लय होने को मुक्ति मानते हैं ।

◆ नास्तिक — मरने से तत्वों में तत्व मिलकर परम मुक्ति मानते हैं जो गदहे, कुत्ते आदि को भी प्राप्त है । वैज्ञानिक इसी कोटि में आते हैं ।

जो वे इन स्थानों में पृथक हों तो मुक्ति से छूट जाएं । मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहीं विचरे, किसी प्रकार का भय, शंङ्का, दुःख न हो । कुछ लोग राम नाम जपने, गंगा स्नान करने, ईसा पर विश्वास लाने, कुरान पर इमान लाने, बलि देने, पाषाण पूजा करने, यज्ञ करने, कांवड लाने, भागवत पढ़ने, गीता-रामायण-पुंराण पढ़ने, किसी देवी देवता की विशेष प्रकार से पूजा करने, जगराता करने, भंडारा करने, काशी मथुरा आदि स्थानों पर शरीर छोड़ने, तीर्थ यात्रा करने, मन्दिर-मस्जिद-गिरजा आदि बनवाने, दान पुण्य करने, श्राद्ध तर्पण करने, मन्त्र पाठ करने, आत्म हत्या करने, भांग पीने, किसी प्रकार के धार्मिक चिन्ह धारण करने, गणेश आदि मूर्तियों का जल में विसर्जन करने अपनी जाति-देश के लिए शहीद होने, व्रत उपवास करने आदि को ही मुक्ति के उपाय मानते हैं । परन्तु वास्तव में इनमें मे कोई भी मुक्ति प्राप्ति में सहायक नहीं, उल्टे अधिक बन्धन में डालने वाले हैं । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, महादेव, आदि सब नाम एक सर्वव्यापक, निराकार ईश्वर के ही हैं ईश्वर में अनन्त गुण होने के कारण उसके अनन्त नाम है । उन नामों से मूर्तिया बना कर पूजना अन्धविश्वास व पाखंड की परकाष्ठा है ।

कुछ लोग शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखते रहने से तत्वज्ञान की, परमसत्य की, मोक्ष की प्राप्ति वताते हैं परन्तु आत्मा, परमात्मा की; वेदादि शास्त्रों की

बात ही नहीं करते, कुछ मरने के पश्चात गरुडपुराण की कथा करने-करवाने या दान पुण्य करने से जीव की मुक्ति मानते हैं। ब्रह्मकुमारी मत वाले ईश्वर को एक देशी व परमधाम में जाकर रहने में मुक्ति मानते हैं।

ये सब साधन जनता को भ्रमित करने वाले हैं और घोर अन्धकार में डुबाने वाले हैं।

साधना में सावधानियां

साधक को जीवन के लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने हेतु किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए इसका उल्लेख इस लेख में करने का प्रयास करेगें :-

1. साधक सदैव स्मरण रखे कि समस्त पदार्थों का, समस्त साधनों का, लौकिक एवं पारलौकिक ऐश्वर्यों का, सत्व रज तम प्रकृति और असंख्य जीवात्माओं का और समस्त ज्ञान-विज्ञान का एक मात्र वास्तविक स्वामी ईश्वर है । वह तो प्रयोक्ता मात्र है, गौण रूप में स्वामी है अथवा न्यासी (ट्रस्टी) मात्र है। कण-कण में, रोम-रोम में ईश्वर का वास है और वही उसका मालिक है । स्वस्वामी की भावना, अपनत्व की भावना, मलकीयत की भावना को, भ्रम को बिल्कुल निकाल दे । सब धन, सम्पति, वस्त्र, मकान आदि केवल प्रयोग के लिए दिए हैं उन पर उसका अधिकार नहीं है ।

2. संसार में कहीं भी कोई भी पूर्ण सुखी नहीं है, चक्रवर्ती राजा भी नाना प्रकार के दुःखों व क्लेशों से पीडित है। हर छोटे बड़े सुख में कई प्रकार के दुःख मिले हुए हैं । रोग, शोक, बुढ़ापा, मृत्यु, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख, गृणवृति विरोध दुःख, अधिभौतिक-आध्यात्मिक-आधिदैविक दुःख, अर्जन दोष, क्षय दोष, रक्षण दोष, संग दोष, हिंसा दोष आदि नाना प्रकार दुःख व दोष रूपी विष इन सांसारिक सुखों में मिले हुए हैं । जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति विष मिले दूध का त्याग कर मृत्यु आदि

दुःखों से बच जाता है उसी प्रकार बुद्धिमान साधक को नाना प्रकार के दुःख रूपी विष मिश्रित सांसारिक सुखों को त्याग कर मृत्यु आदि दुःखों से बचना होगा । स्वाद ले लेकर या सुख ले लेकर पदार्थों का प्रयोग न करें, आवश्कतानुसार ही उनका सदुपयोग करें ।

3. सच्चा सुख, पूर्ण सुख तो केवल ईश्वर में है, बस उसी को प्राप्त करना, उसी की आज्ञा पालन में रहना है ।

4. व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध — साधक और ईश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है, जिस प्रकार ताप प्रत्येक वस्तु में प्रवेश कर जाता है और उसका अस्तित्व भी बना रहता है ऐसे ही ईश्वर रूपी अग्नि/तेज प्रत्येक वस्तु में प्रवेश किया हुआ है और उसका अस्तित्व भी बना हुआ है। व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध के अतिरिक्त ईश्वर के साथ साधक का पिता-पुत्र, मां-बेटे, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, मित्र-मित्र का भी सम्बन्ध है । वेद में आया है-त्वम् हि न पिता वसो, त्वम् माता शतक्रतो वभूविध अथाते सुम्नमीमहे।

5. साधक साधना में आने वाले विध्नों एवं उपविध्नों के प्रति भी जागरूक रहे । किसी भी विध्न-उपविध्न को न आने दे, व्याधि, सत्यान, संशय, आलस्य, प्रमाद, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व, अनवस्थितत्व, दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास-प्रश्वास आदि विध्नों-उपविध्नों में से कोई मार्ग में बाधा बने तो तुरन्त प्रयासपूर्वक उसे रोके ।

6. ईश्वर ही साधक का प्रियतम है प्राणों से प्यारा है, प्राणाधार हे क्योंकि उसी ईश्वर ने उसके लिए यह अदभुत रचना वाला

शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियां, पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अन्न, दूध, फल, फूल, वनस्पतियां, औषधियां, प्राण, अपान, ब्यान-उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृंकल-देवदत्त, धनञ्जय आदि शक्तियां व वेदों का ज्ञान-विज्ञान दिया है । संसार का कोई व्यक्ति, पिता, मित्र, सम्बन्धी या सम्राट इनमें से एक भी वस्तु उसे नहीं दे सकता। अतः उस ईश्वर से बढ़कर उसे अन्य कोई प्यारा नहीं लगना चाहिए ।

7. साधक कुछ प्रेरक वाक्यों को बार बार दोहराए —

साधना का यह आवश्यक नियम है कि उपासना काल में अन्य कोई विषय नहीं उठाना । कोई विषय असावधानी से उठा भी ले तो उसे तुरन्त दवा देना है नहीं तो वह अमर बेल की भांति फैल कर उपासना को उखाड कर फेंक देगा । उपासना के इस नियम की उलंघना करने का परिणाम जन्म-मरण के चक्कर में फंसना और मोक्ष व समाधि के आनंद से स्वय को वंचित करना है ।

संसार में किसी से द्वेष नहीं करना, एक भी व्यक्ति से द्वेष करने से लेने के देने पड़ जाएंगें। मोक्ष व समाधि तो बहुत दूर की बात है उल्टे जीव-जन्तुओं की योनियों में जाना पड़ सकता है ।

योग में प्रवेश तो कर लिया परन्तु यदि सम्पूर्ण तन-मन-धन इसमें नहीं लगाओगे, सर्वस्व की आहूति नहीं दोगे तो अभिमन्यु की तरह मारे जाओगे । इस बात का साधक ध्यान रखे और

धीरे-धीरे सब कुछ त्याग कर ईश चिन्तन में अपने आप को पूरी तरह झोंक दे ।

लुट पिट कर होश में आए तो क्या आए, समय रहते लक्ष्य प्राप्त करना है

8. प्रलयावस्था एवं पदार्थों की अनित्यता का चिन्तन दिन रात करता रहे । संसार का प्रत्येक पदार्थ, आकर्षण, व्यक्ति अनित्य है । हर किसी को 10,20,50,100,1000,2000, लाख, करोड, अरब वर्ष में पूर्णतया नष्ट होना ही है । 101 प्रकार से मृत्यु आ सकती है, वर्तमान शरीर लाश बनेगा, जलाया जाएगा, राख बनेगी, उड़ जाएगी। एक समय आएगा सब सूर्य अपने अपने फन फैलाएगें और अपने अपने ग्रहों-उपग्रहों को खा जाएंगे, जला का राख कर देंगे, आकाश गङ्गाओं के अरबों सूर्य छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाएंगें ।

स्थूल भूत - सूक्ष्म भूत - अहंकार - महतत्व - सत्व रज तम परमाणुओं में बदल जांए । घोर अन्धकार छा जाएगा, शून्य आकाश होगा, न कोई आकार प्रकार होगा, न कोई रंगरूप होगा, न कोई मैं-मेरे पन का प्रशन होगा, सत्व-रज-तम प्रकृति अपनी साम्यावस्था में बिखरी पडी होगी, जीवात्माएं सुषुप्ति अवस्था में बिखरी पडी होगीं, करोड़ों वर्ष पूर्व भी यही अवस्था थी, यह सृष्टि दो प्रलयों के बीच का अन्तराल मात्र है, यहाँ कुछ अपना नहीं, कुछ स्थिर नहीं, सब नाशवान है, सब संस्कार मात्र है, सब आकर्षण छलावा मात्र हैं, सुन्दर से सुन्दर चमड़ी की पतली तह को उधेड़ कर देखो खून से सनी नस-नाड़ियों व मांसपेशियों का जाल मिलेगा, चांद तारे

दूर से ही आकर्षक दिखाई पडते हैं पास जाकर देखो पत्थरों का ढेर मिलेगा, आग ही आग मिलेगी, जो आज अपना प्रतीत होता है कल पराया हो ही जाएगा, जो आज अपने सगी-सम्बन्धी प्रतीत होते हैं कल उनसे दूर-दूर का भी वास्ता नहीं रहेगा, सब अनित्य है-अनित्य है-अनित्य है.........सब्र नाशवान है, सब नाशवान है.....

सब संस्कार मात्र है......बन्धन ही बन्धन है मुझै इनसे बचना है यही मेरे बन्धन का कारण हैं, इन्द्रियों के भोग ही मेरे दुःख व आवागमन का मूल कारण हैं । सब संवेदनाएं चाहे वे शारिरिक या मानसिक हों-अनित्य हैं, उनके प्रति प्रतिक्रिया (react) करने से ही संस्कार बनते हैं सब संवेदनाओं को दृष्टा भाव से देखो, देखते देखते विलीन हो जाएंगो, तुम तनिक भी विचलित मत होना । ध्यानकाल में प्रलयावस्था का सम्पादन करके प्रभु का चिन्तन करो । नाम-रूप ही नहीं तो वृत्तियां कैसे उठेंगी ।

9. नित्य पदार्थ तो बस तीन ही हैं-ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति। तीनों का साध्य, साधक व साधन का सम्बन्ध है । तीनों के लक्षणों को बार-बार दोहराएं - ईश्वर सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उनका आदि मूल है, ईश्वर सच्चिदानंस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्त्ता, सृष्टिधर्ता, सृष्टिहर्ता और मोक्ष दाता हैं, ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय से रहित है, ईश्वर सर्वज्ञ, काल

से परे, गुरुओं का गुरु है, उसके वाचक नाम ओम् का अर्थ सहित चिन्तन करने से उसका साक्षात्कार होता है और सब विघ्नों-उपविघ्नों का नाश होता है ।

जीवात्माएं — अणुरूप, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान, एकदेशी, चेतन, अनादि, अजर, अमर हैं । सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, निमेष, उन्मेश, गमन, मनन, इन्द्रिय, अन्तरविकार वाली हैं । इनमें २४ प्रकार की स्वाभाविक शक्तियाँ भी है जिनकी सहायता से मुक्ति में सब कार्य करती एवं आनन्द भोगती हैं ।

प्रकृति — सत्व-रज-तम त्रिगुणात्मक है, जड है, अनादि हैं, सृष्टि का उपादान कारण है, इससे बने सब पदार्थ अनित्य हैं, अपवित्र हैं, अनात्म/जड हैं, दुःख रूप हैं, आपके नहीं हैं इनमें ममत्व की भावना रखना, इनकी चमक दमक के पीछे भाग दौड़ करना मूर्खता है, अज्ञानता है, अविद्या है, सब दुखों व क्लेशों का कारण है ।

10. साधक ध्यान काल में अथवा जब भी ईश्वर की उपासना करे-मन्त्र व जप वाक्य के एक एक शब्द का अर्थ एवं भावार्थ जानकर ईश्वर को हृदय देश में एक केन्द्र बना कर समर्पण व सम्बोधन के साथ उच्चारण करे। अर्थात धारण व ध्यान को दृढ़ करें । इसका निरन्तर बार-बार अभ्यास करे । कुछ मन्त्रों को, जप वाक्यों को, प्रार्थनाओं को, भजनों व श्लोकों को अच्छी तरह कण्ठस्थ करके रखे ताकि बार-बार पुस्तक या सञ्चिका का प्रयोग न करना पड़े, चलते फिरते, उठते-बैठते इनके माध्यम से ईश्वर की भक्ति की जा सके।

11. साधक सदैव स्मरण रखे/प्रतिदिन इसका चिन्तन करे कि उसके जीवन का उदेश्यय ईश्वर को प्राप्त करना और करवाना है । कोई अन्य लक्ष्य साथ में बनाए रखना, संस्थाएं खड़ी करना, चलाना सब इस मार्ग में बाधक हैं । आलोचना, खण्डन-मण्डन व अन्य सुधार के कार्यों को गौण मान कर चले ।

12. य़म-नियम इस मार्ग की नींव हैं अतः उनका सूक्ष्मता से, दृढ़ता से पालन करे। दोनों समय उपासना से पूर्व संकल्प करे कि :—

- मैं मन, वाणी और शरीर से क़िसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूंगा, किसी के प्रति द्वेष की भावना नहीं रखूंगा, सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करूंगा, न्याय और धर्म की रक्षा हेतु कुछ संघर्ष करना पडे तो भीतर प्रेम, करूणा और समता के भावों को बना कर रखूंगा । साधक का न्यायाधीश ईश्वर है वह सब देख सुन जान रहा है उसे किसी साक्षी की भी आवश्यकता नहीं । साधक न्याय के लिए लोक़ अदालतों की शरण में न ही जाए तो अच्छा है । सदैव सत्य और प्रिय बोलूंगा ।
- किसी प्रकार की चोरी आदि नहीं करूंगा, बिना पूछे किसी दूसरे की वस्तु का प्रयोग नहीं करूंगा, किसी के अधिकारों हनन नहीं करूंगा ।
- मन और इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखूंगा, वीर्य की रक्षा करूंगा । ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा ।
- आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करूंगा, जो कुछ भी ईश्वर ने प्रसाद रूप में दिया है मैं उसका सदुपयोग

करूंगा, सुपात्रों में उसका वितरण करूंगा, आवश्यकतानुसार व धर्मानुसार ही उसकी वृद्धि करूंगा, उसकी रक्षा करूंगा ।

- प्रतिदिन व्यायाम, योगासन, स्नान, अल्पमात्रा में शुद्ध सात्विक भोजन, उपवास एवं यज्ञ आदि से अपने शरीर, मन बुद्धि एवं वातावरण को शुद्ध रखूंगा ।

- अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयास करूंगा, उसका जो भी फल मिले उसमें सन्तुष्ट रहूंगा, कभी निराश नहीं होऊंगा ।

- भूख प्यास, गर्मी-सर्दी, लाभ-हानि, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, हर्षशोक, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित आदि प्रत्येक अवस्था को अनित्य ज़ानकर सम रहूंगा, विचलित नहीं होऊंगा, तितिक्षु बन कर रहूंगा तपस्वी बन कर रहूंगा ।

- मोक्ष आदि शास्त्रों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार करूंगा, आत्म निरीक्षण द्वारा अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों को जान कर उन्हें दूर करूंगा, ईश्वर के पवित्र एवं सर्वोत्तम् ओम् नाम का सतत् स्मरण करूंगा ।

- ईश्वर की दिव्य रचना एवं उसके बेजोड़ उपकारों का चिन्तन कर उसके प्रति विश्वास और प्रेम को दृढ़ करूंगा । उपरोक्त यम-नियमों के पालन में ईश्वर की सहायता की याचना भी करे ।

13. साधक अपने गुरु, समाज व राष्ट्र के नियमों के अनुसार चले पूर्णतया अनुशासन में रहे, दिनचर्या को पूर्णतया अनुशासित ढंग से चलाए । उपासना का समय, स्थान, विधि यहाँ तक हो सके निश्चित रखें ।

14. साधक आप्त पुरुषों के वचनों का, आर्ष ग्रन्थों के वचनों को एवं वेदों पर दृढ विश्वास रख कर चले । जिस प्रकार लोक में विद्यालयों के विद्यार्थी उस पर दृढ विश्वास रख कर चलते है जो भी उन्हें अध्यापक पढाते हैं या जो वे पुस्तकों में पढते हैं उसी प्रकार साधक सत्य वचनों को पूर्णतया सत्य मान कर चले । शंका हो तो दूर करे, फिर भी समझ में न आए तो अपनी बुद्धि को कम जानते हुए ऋषि वचनों को प्राथमिकता दे ।

15. लोक में व्यवहार के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा का नियम बना कर चले । सुखी-समृद्ध लोगों से मित्रता बना कर रखें, दुःखी जनों पर दया करे एवं यथाशक्ति उनका हर प्रकार से सहयोग करे, पुण्यात्माओं से मिल कर प्रसन्न होवे उनका पूरा आदर करें, उनसे कुछ सीखने का प्रयत्न करे, दुष्टजनों की उपेक्षा करे, न उनसे प्रीति रखे, न वैर रखे ।

16. साधक अपनी वाणी पर विशेष नियंत्रण रखे, कम बोले, मधुर बोले, जहाँ तक हो सके मौन रहे, ऊँची आवाज में अथवा कड़वी भाषा में न बोले, व्यंग्यात्मक शब्दों का भी प्रयोग न करे ।

17. साधक का प्रत्येक कार्य ईश्वर प्राप्ति के लिए हो । जो भी ईश्वर प्राप्ति में तनिक भी बाधा प्रतीत हो उसे तुरन्त छोड़ दे। साधक का उठना, बैठना, सोना, भ्रमण करना, व्यायाम करना, लिखना, पढना, बोलना सब ईश्वर प्राप्ति के लिए हो ।

18. साधक मान-सम्मान की इच्छा बिल्कुल न करे । वह अच्छी तरह जान ले कि मान-सम्मान साधना में विष के तुल्य है

क्योंकि इससे वृत्तियां सांसारिक होती है बहिर्मुखी होती हैं। अपमान को अमृत के तुल्य समझे क्योंकि इसमे वैराग्य में वृद्धि होती है।

19. संसार में हजारों प्रकार के विषय हैं, ज्ञान विज्ञान हैं, साधक केवल ईश्वर प्राप्ति सम्बन्धी विषयों में रुचि ले। उसके पढने लिखने बोलने का एक ही विषय हो- ईश्वर। सांसारिक विषयों की चर्चा न करे।

20. साधक विद्या प्राप्ति के चार साधनों -श्रवण, मनन, निदिध्यासन के लिए प्रति दिन कुछ समय अवश्य लगावे।

21. साधक सतत् परीक्षण करता रहे - क्या वह ईश्वर की कृपा का पात्र है ? क्या वह सब कुछ समर्पित करने को, त्यागने को तत्पर है ? क्या वह योग के समस्त अङ्गो का ठीक ठीक पालन करने लगा है, क्या उसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं ? क्या उसका शरीर स्वस्थ है ?

22. साधक दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करे। स्वयं दुःख उठाकर दूसरों को सुखी करने के लिए अपनी सुख - सुविधाओं को त्यागने में संकोच न करें।

23. साधक दूसरों के गुण देखे और अपने अवगुण देखे अर्थात् साधक हंस की तरह व्यवहार करे, सूअर की तरह व्यवहार न करे। अपने अवगुणों को दूर करे, दूसरों के गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयास करे।

24. साधक समस्त भोग्य पदार्थों व साधनों का प्रयोग शरीर की रक्षा के लिए करे।

25. साधक आवश्यकता से अधिक भोजन न करे। भूख न हो तो बिल्कुल न खाए। स्वाद के लिए भोजन न करें। एक बार किया भोजन पूर्णतया पच कर 18 घंटे के बाद बड़ी आँत से बाहर मल रूप में निकलता है उससे पहले पुनः भोजन करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं है। भोजन की अधिक आवश्यकता पच्चीस वर्ष की आयु तक होती है पश्चात् तो थोड़ी टूट फूट की मरम्मत के लिए अत्यन्त हल्के भोजन की आवश्यकता होती है। साधक के लिए अच्छा है कि वह एक समय प्रातः 10-11 बजे भोजन ले और भोजन में सलाद व फल आदि का अधिक प्रयोग करें। नमक, चीनी, मिर्च, मसाले, वैंगन, चाय, काफी, शीतल पेय, तला, भुना व अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करें। मांस, अण्डे, सिगरेट, शराब आदि का प्रयोग करने करने वालों के पास न बैठें और न उसके घर का जल आदि ग्रहण करे।

26. साधक हेय, हेय हेतु, हान, हानोपाय को भली प्रकार समझ कर दुःखों से छूटने और सुख को/मोक्ष को पाने का प्रयास करे। जाति, आयु, भोग के रूप में दुःख भोगने पड़ते हैं। दुःख का कारण प्रकृति और जीवात्मा का संयोग है, जन्म है और जन्म का कारण प्रवृति (अच्छे बुरे कर्म) है, प्रवृति का कारण दोष (राग-द्वेष-मोह) है और दोष का कारण अविद्या है। साधक अपने अन्दर अविद्या जन्य व्यवहार को पूर्णतया उखाड़ कर फेंक देवे। अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हो जाता है और यही सुख है (हान है) हान का/सुख का एक ही उपाय है विवेक ख्याति अर्थात् विवेक वैराग्य

द्वारा अविद्या को दूर करना, प्रकृति पुरुष के भेद का ज्ञान होना ।

27. साधक अपने जीवन में किसी धार्मिक विद्वान, त्यागी, तपस्वी योगी को अपना गुरु बनावे और उसके निर्देशों अनुसार चले। समय समय पर गुरु का सत्संग करे । कोई शंका हो तो आज्ञा लेकर, श्रद्धापूर्वक, जिज्ञासु बन कर अपने प्रश्न उसके सामने रखें । परन्तु किसी प्रकार का वाद-विवाद न करे ।

28. साधक यहां तक हो सके एकांत वास करे, हो सके तो वर्ष में 1-2 बार 1-2 मास के लिए किसी निर्जन स्थान अथवा आश्रम में जाकर साधना करे ।

29. साधक सदैव गम्भीर बना रहे- अन्दर ही अन्दर ईश्वर का चिन्तन, अनित्यता का चिन्तन चलता रहे । खिलखिलाकर हंसना, समाचार पढ़ना, रेडियो, दूरदर्शन का प्रयोग करना, दूरभाष का अधिक प्रयोग करना, मीटीगों, बैठकों में जाना, पद ग्रहण करना, सैर सपाटे के लिए जाना । महिलाओं से अनावश्यक बातें करना साधक के लिए बाधक हैं ।

30. चाहे पूरा विश्व विरोधी हो जाए, परन्तु वैदिक सिद्धान्तों व नियमों को न छोड़े । नश्वर देह, पद, प्रतिष्ठा के लिए अन्याय, छलकपट, झूठ आदि का आश्रय न लेवे ।

31. सब प्रकार की ऐषणाओं से दूर रहे । समस्त वासनाओं, ऐषनाओं व कुसंस्कारों को उखाड़ कर फैंक देवे । ओम् जप का आश्रय लेवे । जप, स्वाध्याय आदि में अपने को व्यस्त रखे ताकि ये वासनाएं सिर न उठाने पाएं । प्रतिपक्ष भावना बनाएं कि इनका शिकार होना आवागमन के भयंकर दुखों का

शिकार होना है । छोड़े हुए को पुनः ग्रहण करना कुत्ते द्वारा वमन किए हुए पदार्थ को पुनः खाने के समान है ।

32. साधक सांसारिक व्यक्तियों से कम से कम बात करे । पात्रता, योग्यता देखकर ही अध्यात्म की चर्चा करें । अपने सगे-सम्बन्धियों से भी कम ही मिले जुले । राजनेताओं की खुशामद आदि में न पड़े । हो गये स्वतन्त्र जब एक बार, फिर बार बार का बन्धन क्या ? हम साधक हैं परमेश्वर के, फिर ओरों का अभिनन्दन क्या ?

33. साधक क्रोध और प्रतिशोध की भावनाओं से सदैव दूर रहे जब ईश्वर को न्यायकारी व रक्षक मान लिया तो अपने हाथ में ईश्वरीय कानून को लेना अपराध है । कोई कुछ भी कहे, कितना ही अत्याचार, अन्याय करे साधक शांत रहे । उसकी सद्बुद्धि की कामना करे, उसका बुरा बिल्कुल न सोचे ।

34. थोड़ी सी असावधानी से साधक वहीं का वहीं आ खड़ा होता है बाल्यवस्था से ब्रह्म विद्या न सीखने के कारण इन संस्कारों को दृढ करने के लिए और कुसंस्कारों को क्षीण करने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ेगा, बहुत सावधान रहना पड़ेगा । साधक सदैव जागरूक होकर रहे- सांसारिक वृतियां, वासनाएं, ऐषणाएं चोरों की भांति उसके चारों ओर मंडरा रही होती हैं कोई वृति आक्रमण न करने पाए । वही साधक जागरूक है जो हेय हेय-हेतु, हान, हानोपाय को अच्छी तरह जानकर तदनुसार आचरण करता है ।

विवेक वैराग्य पद्य

यावतस्वस्थमिद्रं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपरखननं प्रत्युद्यमः कीदृश : ।।
(वैराग्यशतक, श्लो. ७१)

भावर्थ — जब तक यह शरीर स्वस्थ अर्थात् रोगरहित है, जब तक बुढापा दूर है, जब तक सभी इन्द्रियों में शक्ति विद्यमान है और आयु बची हुई है, तभी तक बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि आत्मकल्याण के लिए महान् पुरुषार्थ करे, अन्यथा जैसे घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से कोई लाभ नहीं होता, वैसे मृत्युकाल में कुछ भी नही हो सकेगा ।

आयुर्वर्षश्रशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्थ गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोंः।
शेषं व्याधिवियोगदुः खसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचश्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ।।
(वैराग्यशतक, श्लो, १४)

भावार्थ — सामान्यरूप से मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है । इसका आधा भाग अर्थात् पचास वर्ष तो सोने में ही चले जाते हैं । शेष बचा आधे का आधा भाग अर्थात् पच्चीस वर्ष, वह बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में बीत जाता है । शेष पच्चीस वर्ष का समय रोग, वियोग, आजीविका, बच्चों के लालन-पालन आदि दुःखों में बीत जाता है । जल की चञ्चल तरङ्गों के समान जीवन में मनुष्य

को सुख कहाँ है ? सुख तो ईश्वरोपासना में ही है ।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहवर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥
(वैराग्य शतक, श्लो. ४०)

भावार्थ — इस संसार में एक आशा नाम की नदी है । यह नदी मनोरथ-इच्छारूपी जल से भरी हुई है । इस में तृष्णालोभ रूपी तरङ्गें उठ रही हैं । यह राग द्वेष रूपी मगरमच्छों से परिपूर्ण है तथा तर्क-वितर्क रूपी जलपक्षी इसमें तैर रहे हैं । धैर्यरूपी वृक्षों को उखाड़ने वाली इस नदी में अज्ञान रूपी भँवर उठ रहे हैं । इस नदी के दोनों किनारों पर ऊँचे-ऊँचे चिन्तारूपी तट हैं । इस नदी को पार करना बहुत कठिन है, परन्तु इस नदी को शुद्ध अन्तःकरण वाले त्यागी, तपस्वी, विरक्त योगी पार करके बन्धनों से छूटकर ब्रह्मानन्द को भोगते हैं ।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवनं,
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्टा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥
(वैराग्य शतक, श्लो.७)

भावार्थ — सूर्य नारायण के उदय और अस्त होने के साथ-साथ प्रतिदिन आयु भी घटती जा रही है और इसी प्रकार दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, और वर्ष पर वर्ष बीतते जा रहे हैं, किन्तु सांसारिक कार्यों में निमग्न मनुष्य को समय के व्यतीत होने का कोई भी ज्ञान नहीं हो रहा। जन्म, बुढ़ापा, रोग, कष्ट और मृत्यु आदि भयंकर दुःखों को

देखकर कोई भय उत्पन्न नहीं हो रहा, इससे ऐसा लगता है कि सारा संसार (प्राणी जगत्) मोह-अज्ञान रूपी मदिरा को पीकर मतवाला हो रहा है अर्थात् सब कुछ देख सुनकर भी जीवन के लक्ष्य के प्रति असावधान एवं पुरुषार्थ हीन है ।

> को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
> का हानिः समयच्च्युतिर्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः।
> कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं,
> विद्या किं सुखमप्रवास गमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥
> (नीतिशतक, श्लो. १४)

भावार्थ — लाभ क्या है, श्रेष्ठ पुरुषों का संग । दुःख क्या है ? मूर्खों का संग । हानि क्या है ? समय की बरबादी या अवसर को खो देना । चतुराई क्या है ? धर्म के रहस्यों में लगे रहना । वीर कौन है ? इन्द्रियों का विजेता । उत्तम स्त्री कौन है ? पति की आज्ञा के अनुकूल चलने वाली । धन क्या है ? विद्या । सुख क्या है ? विदेश में न रहना । राज्य उत्तम कौन सा है ? जिसमें आज्ञाओं का पालन हो ।

> विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
> विद्या भोगकरी यशः सुखकारी विद्या गुरूणां गुरुः।
> विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,
> विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥
> (नीतिशतक, श्लो.११)

भावार्थ — विद्या मनुष्य की शोभा है, विद्या ही मनुष्य का अत्यन्त गुप्त धन है । विद्या भोग्य पदार्थ, यश और सुख देने वाली है । गुरुओं का भी गुरु है । विदेश यात्रा में विद्या कुटुम्बीजनों और मित्रों के समान सहायक होती है । विद्या ही सबसे बड़ा देवता है ।

विद्यायुक्त मनुष्य का ही राजाओं और राज-सभाओं में आदर-सम्मान होता है, धन का नहीं। वास्तव में देखा जाये तो विद्याहीन मनुष्य पशु के तुल्य ही है।

एके सत्पुरूषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥
(नीतिशतक, श्लो. ७१)

भावार्थ — संसार में वे मनुष्य 'सत्पुरुष' हैं, जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों की भलाई के लिए अपने तन-मन धन को लगा देते हैं। दूसरे प्रकार के मनुष्य 'सामान्य' कहलाते हैं जो अपने काम न बिगाड़ते हुए दूसरों की भी भलाई करते हैं। तीसरे प्रकार के मनुष्य 'राक्षस' कहलाते हैं जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरों के बने बनाये काम को बिगाड़ देते हैं। परन्तु जो लोग बिना किसी स्वार्थ के (बिना अपने लाभ) के व्यर्थ ही दूसरों की हानि करते हैं, ऐसे चौथे प्रकार के मनुष्यों को किस नाम से पुकारा जाय हम नहीं जानते, आप स्वयं ही सोचें।

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवम्,
आयुष्यं जल-लोल-बिन्दु-चपलं फेनोपमं जीवनम्।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम्,
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकग्निना दह्यते॥
(हितोपदेश)

भावार्थ — धन तो पैरों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ी नदी के वेग के समान है, आयु पानी के प्रवाह के समान है, और जीवन फेन (झाग) के समान है, ऐसा जानते हुए भी जो मूर्ख

धर्माचरण नहीं करता, वह पीछे बुढ़ापे में शोक रूपी अग्नि में पश्चात्ताप करता हुआ जलता है ।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुः खरचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥
(वैराग्शतक, श्लो० ७३)

भावार्थ — वेदों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य बड़े-बड़े शास्त्रों को केवल पढ़ते-पढ़ाते रहने से तथा विभिन्न कर्मकाण्डों का करते रहने से स्वर्ग में एक अच्छा घर व भोग्य साधन मिल जाने के अतिरिक्त और क्या विशेष लाभ है ? मनुष्य का मुख्य कार्य तो ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करने के लिए हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके समाधि लगाना ही है, जो संसार के समस्त दुःखों के कारण (अविद्या) को जला देने के लिए अग्नि का काम करता है । अन्य सब कार्य तो बनिये के व्यापार के समान हैं ।

भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥
(वैराग्य शतक, श्लोक १२)

भावार्थ — हम सांसारिक विषय भोगों का उपभोग नहीं कर पाये, अपितु उन भोगों को प्राप्ति करने की चिन्ता ने हम को ही भोग लिया । हमने तप नहीं किया, बल्कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ताप हमको ही जीवन भर तपाते रहे । भोगों को भोगते-भोगते हम काल को नहीं काट पाये, प्रत्युत काल ने हम को ही नष्ट कर दिया । इसी प्रकार भोगों को प्राप्त करने स्वरूप तृष्णा ता बूढ़ी नहीं हुई अपितु हम ही बूढ़े हो गये ।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने ॥
देहश्चितायां परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

भावार्थ — मनुष्य जब मरता है तब सारी धन सम्पत्ति पृथ्वी पर ही पड़ी रह जाती है, पशु बाड़े में खड़े रहते हैं, जीवन-साथी (पत्नी या पति) घर के दरवाजे तक साथ देता है, मित्र - बन्धु सम्बन्धी श्मशान तक साथ चलते हैं और यह शरीर चिता पर जलकर भस्म हो जाता है। यदि जीवात्मा के साथ परलोक में कोई चलता है, तो वह कर्म ही है, जो उसने जीवित रहते हुए अच्छा या बुरा किया है, और कोई साथ नहीं चलता है।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती, रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो, लोकस्थाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥
(वैराग्य शतक. श्लोक ९३)

भावार्थ — शेरनी के समान भयभीत करने वाला बुढ़ापा सामने खड़ा है, अनेक प्रकार के रोग शत्रुओं के समान शरीर पर आक्रमण कर रहे हैं, और फूटे हुए घड़े में से जैसे निरन्तर पानी रिसता रहता है, वैसे ही आयु क्षीण होती जा रही है, अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि लोग फिर भी पाप कर्मों में लगे हुए हैं!

प्रत्यहं प्रत्वेक्षोत नरश्चरितमात्मनः।
किन्तु मे पशुभिस्तुल्यं किन्तु सतपुरुषैरिव ॥
(शाङ्गधर संहिता)

भावार्थ — मनुष्य को चाहिए, वह प्रत्येक दिन आत्म निरीक्षण करके पता लगावे कि मेरा जीवन पशुओं के समान केवल खाने-पीने में ही व्यतीत हो रहा है या सत्पुरुषों के समान उत्तम-उत्तम कार्यों के करने में लग रहा है।

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽयगादयम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥
(महाभारत, शान्ति० १७४-१४)

भावार्थ — जो उत्तम कार्य करना हो, वह आज ही कर डालो, कहीं ऐसा न हो कि काल तुम्हें निगल जाय। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि तुमने कोई कार्य पूरा किया है या नहीं।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसग्रंहः॥

भावार्थ — शरीर नित्य रहने वाले नहीं हैं, धन सम्पदा भी अनित्य है और मृत्यु हर समय सिर पर मँडराती रहती है, इसलिए शीघ्र ही धर्म-सग्रंह करना चाहिए ।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥
(यक्ष प्रश्न, महा०)

प्राणी दिनों-दिन मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, परन्तु बचे हुए लोग यहीं स्थिर रहना चाहते हैं । इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा ?

अस्मिन् महामोहमये कटाहे, सूर्याग्निना रात्रि दिवेन्धनेन।
मासर्तु दर्वी परिघट्टनेन, भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥
(यक्ष प्रश्न, महा०)

यह संसार मोहरूपी बहुत बड़ा कडाहा है, इसमें नीचे सूर्य अग्नि द्वारा रात-दिन रूपी ईधन जल रहा है।कड़ाहे में मास और ऋतु रूपी चमचा चल रहा है । काल (समय) प्राणियों को कहाड़े में डालकर पका रहा है, यह बात है । ***

आत्म निरीक्षण

अपने आप ही अपने को देखना, अपना अध्ययन करना आत्मनिरीक्षण कहलाता है।

रात्रि सोने से पूर्व आत्म निरीक्षण (आत्म चिन्तन) अवश्य करना चाहिये। इससे अपने आपको देखने, अपने विषय में सोचने, समझने के लिये निम्नलिखित बातों पर विचार करें—

1. आज मैंने पूरे दिन में क्या-क्या कार्य किये, कोई आवश्यक कार्य छूट तो नहीं गया।
2. उन कार्यों को करने में मेरे से कहाँ-कहाँ भूल (त्रुटि) हो गई? वह भूल मैंने जानबूझ कर की या अकस्मात् हो गई ?
3. आज मैंने कोई काम-चोरी-छिपाव को तो नहीं किया ?
4. किसी से प्रति ईर्ष्या, द्वेष का व्यवहार तो नहीं किया ?
5. अपने स्वार्थ, अभिमान में आकर कोई अनर्थ तो नहीं कर डाला ?
6. कहीं आलस्य, प्रमाद, असवाधानी तो नहीं की ?
7. यदि ऐसा जाने अनजाने में कहीं कभी किया या हो गया हो तो उसे पुनः न करने का दृढ़ संकल्प करें।
8. सभी कार्यों को करते समय अपने बड़े-बूढ़ों की उपस्थिति के समान सबके सबसे बड़े प्रभु का ध्यान आया या नहीं ?
9. वेदादि सत्य शास्त्रों में निर्दिष्ट ईश्वर के आदेश, उपदेश, निर्देशों का उल्लंघन तो नहीं किया ?
10. सत्य-धर्म के आचरण व्यवहार में असावधानी तो नहीं हुई ? यदि हुई या की हो तो, आगे ऐसा न करने का व्रत लें।

11. आज अपने कर्त्तव्य कर्मों को श्रम, सचाई के साथ किया या नहीं ?
12. अपनी प्रातः सायं की ईश्वर उपासना, साधना ठीक से की या नहीं ?
13. इसी प्रकार दैनिक पञ्चयज्ञों का निर्वाह सम्यक्तया हुआ या नहीं ?
14. अपने सभी कर्मों पर हमारा अधिकार है या मन का अधिकार है ?
15. हमने अपने मानव जीवन के परम लक्ष्य को विसारा तो नहीं?
16. अपने पारिवारिक बड़े छोटों के प्रति हमारा आचरण सही है या नहीं ?
17. अपने समाज, राष्ट्र और विश्व के लिये हम क्या कर रहे हैं?
18. अन्य मूक प्राणियों के प्रति हमारा व्यवहार क्रूर तो नहीं है?
19. किसी के संसर्ग से हमारे में कोई दुर्गुण-दुर्व्यसन तो नहीं पनप रहा ?
20. क्या आप में बुराई को छोड़ने और भलाई (अच्छाई) को शीघ्र अपनाने एवं उसे पालन की दृढ़ता है ?
21. आप अपने ब्राह्यकरण के साथ-साथ अपने अन्तःकरण की शुद्धि सफाई पर भी ध्यान दे रहे हैं या नहीं ?
22. आप पतन की ओर जा रहे हैं या वहीं के वहीं जैसे के तैसे हैं अथवा दिन-प्रतिदिन आगे उन्नति करने को प्रवृत हैं? सोचिये-इन तीन में से आप कौन सी स्थिति-अवस्था में हैं?

23. आप अपने शरीर और संसार का कितना सदुपयोग कर रहे हैं ? क्या आपने इनका दुरुपयोग रोक दिया है ?

24. सांसारिक विषयों और अनर्थकारी कृत्य कर्मों से मन को रोकने में सफल (समक्ष) हो पाए हैं या नहीं ?

25. इन बातों के अनुसार अपने में जो त्रुटि-दोष दीखते, या अनुभव होते हों, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का भरपूर प्रयत्न करें, तभी कल्याण है।

26. परमात्मा के गुणों को अपनाने, उन्हें अपने जीवन-व्यवहार में (आचरण में) लाने में हम तत्परता दिखा रहे हैं या नहीं।

27. अपने जीवन-व्यवहार की चेष्टाओं पर ध्यान दें कि वहाँ वहाँ हमारा झुकाव संसार की ओर अधिक है या प्रभु की ओर? सभी कर्मों में प्रभु के समर्पण होकर, उसे साक्षी बना रखा है या नहीं ?

28. जीवन में कोई अवगुण न आने दें, आए हुए को भगाकर सद्गुण धारण करें, इसी में हमारा कल्याण हैं ।

29. कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा है कि हम भगवान् से प्रार्थना कुछ करते हैं और व्यवहार-आचरण कुछ अन्य करते हैं, तो यह अपने लिये सरासर धोखा है।

30. यदि हम अपने उत्तरदायित्वों से भाग रहे हैं, उनकी उपेक्षा कर रहे हैं तो समझो हम अपराध कर रहे हैं ।

सच्चा साथी कौन ?

1. शरीर सहित संसार की सभी वस्तुएँ और व्यक्ति हमारे साथ (पास) पहले नहीं थे, अब हैं आगे फिर भी नहीं रहेंगे। अतः ये हमारे सदा के सच्चे साथी कभी नहीं हो सकते। हम (आत्मा) कालातीत अजर अमर हैं, परमात्मा भी ऐसा ही है, और वही हमारा सच्चा हितैषी भी है। अतः वही परमात्मा हमारा सदा का सच्चा साथी है, अन्य कोई नहीं।
2. संसार की जो भी वस्तु हम ग्रहण करते हैं, वे सभी परिणामी, बूढ़ी, वासी, जीर्ण-शीर्ण, टूटने-फूटने या परिवर्तित होने वाली हैं। जबकि हम (आत्मा) ऐसे नहीं हैं।अतःपरमात्मा ही हमारा सदा का सच्चा साथी है।
3. सांसारिक विषय — वस्तुएँ अज्ञ (ज्ञान रहित) हैं, वे हमारे हिताहित को नहीं जानती। अतः वे हमारी सदा की सच्ची साथी नहीं हैं।
4. सांसारिक विषय — वस्तुएँ अपने आपमें अचेतन जड़ हैं और जड़ पदार्थ अपने आप किसी के लिये कुछ भी करने में असमर्थ हैं।फिर वे सदैव के लिये हमारे सच्चे साथी कैसे होंगे ?
5. सांसारिक विषय - वस्तुएँ आसक्ति, कामना, कालुष्य, तृष्णा, रागद्वेष आदि असुन्दर, अहितकर भावों को बढ़ाते और सुन्दर, सुगुण सुयश को नष्ट करते हैं।फिर वे हमारे सदा के सच्चे साथी कैसे बन सकेंगे ?
6. संसार के विषय वस्तुएँ और इनकी सामग्री-साधन हमें बाहर से, दूर से, पृथक् से येन-केन प्रकारेण लेने पड़ते हैं। कभी ये

नहीं मिले तो दुःखी रहना पड़ता है, अतः ये हमारे सदा के सच्चे साथी नहीं ।

7. इन सांसारिक विषय वस्तुओं का सम्बन्ध हम (आत्मा) से न होकर प्रायः हमारे ही तन मन से होता है और इनसे तन-मन की ही क्षणिक तृप्ति होती है, हमारी नहीं । अतः ये हमारे सदा के सच्चे साथी नहीं हो सकते ।

8. सभी सांसारिक विषय वस्तुएँ और उनकी सहायक सामग्री साकार हैं और हम (आत्मा) निराकार हैं, अतः साकार वस्तु निराकार की सदा सच्ची साथी नहीं हो सकती। आत्मा और परमात्मा दोनों निराकार है, अतः परमात्मा ही जीवात्मा का सच्चा साथी है ।

9. सांसारिक विषय वस्तुएँ पंचभूतों से उत्पन्न होने या बनने वाली हैं और आत्मा अर्थात् हम किसी तत्त्व से मिलाकर बनने, उत्पन्न होने वाले नहीं है । अतः ऐसा ही परमात्मा हमारा सदा का सच्चा साथी है ।

10. सांसारिक विषय वस्तुएँ हमें सर्वत्र और सर्वकाल में उपलब्ध होने वाली नहीं है । अतः ये हमारी सदा की सच्ची साथी नहीं हो सकती, जबकि ईश्वर हमें सर्वत्र सदैव प्राप्य है अतः वही सच्चा साथी है ।

11. सांसारिक विषय — वस्तुओं में देखने, सुनने, जानने की शक्ति नहीं होती,। अतः जब वे हमें समझती ही नहीं तो वे हमारा सच्चा हित भी नहीं कर सकती ।

12. सांसारिक विषय वस्तुओं के सेवन से हम (आत्मा) अपवित्र

और कुसंस्कारी बनते हैं । अतः अपवित्र अशुद्ध करने वाली होने से वे हमारी सदा की सच्ची साथी नहीं बन सकती ।

13. अध्यात्म (आत्मा–परमात्मा सम्बन्धी) ज्ञान हमारी आन्तरिक भूख–तृषा को शान्त करता है जबकि सांसारिक विषय वस्तुएँ आत्मा को भूखा, अशान्त, रोगी और पतित बना कर नरक में डुबा देती हैं फिर वे हमारी सच्ची साथी, हितकारी कैसे हुई ?

14. पंच भूतात्मक होने से इन्द्रियों का झुकाव (उन्मुखा) सांसारिक विषय वस्तुओं की ओर प्रायः रहता है । अतः वे आत्मिक उन्नति में बाधक होने से हमारी सच्ची साथी नहीं बन सकती। केवल ईश्वर ही आत्मा का सच्चा साथी है ।

15. जिन सांसारिक विषय–वस्तुओं के लेने, देने और भोगने से हम दुःख सागर में जा डूबते हैं । तब वे हमारी सच्ची साथी कैसे बन सकती हैं, अर्थात् कभी नहीं ।

16. सांसारिक विषय–वस्तुओं की भोगविद्या को न जानने से हम जन्म–जनमान्तर तक के लिये घोर–संकट में पड़ जाते हैं, अतः वे हमारी सच्ची साथी नहीं हैं ।

17. सांसारिक विषय - वस्तुएँ स्वनियन्त्रित न होकर सर्वथा पराधीन होती हैं, अतः पराधीन वस्तु कभी भी किसी की सदैव सच्ची साथी नहीं हो सकती ।

18. सभी सांसारिक विषय वस्तुएँ अनेकत्व वाली हैं । वे अपने अनेकत्व के कारण हमें एकात्व (स्थिरता एकात्मता) के साथ सहयोग नहीं दे सकती, अतः वे हमारी सच्ची साथी भी नहीं हो सकती ।

19. सांसारिक विषय वस्तुएँ हमारे में रजोगुण, तमोगुण, को बढ़ाती हैं । उनके कारण हम चंचल, दुर्गुणी, व्यसनी बन कर पापी हो जाते हैं । अतः वे हमारी सच्ची साथी नहीं हुई ।

20. सांसारिक विषय वस्तुओं के खाने पीने और सेवन से हमारे तन मन में रोग शोक आदि अनेक व्याधियां आ जाती हैं, अतः वे हमारी सच्ची साथी नहीं ।

21. इनका सेवन हमारे तन मन में विखराब उत्पन्न करता है, मन चंचल, अस्थिर, भटकने वाला हो जाता है । अतः ये हमारी सच्चे साथी हो ही नहीं सकती ।

22. ध्यान या साथ अपने समान या श्रेष्ठ का होना चाहिये । सांसारिक विषय वस्तुएँ न हमारे (आत्मा के) समान हैं और न श्रेष्ठ । अतः वे हमारी सच्ची साथी नहीं हो सकती ।

23. सांसारिक विषय — वस्तुएँ स्थूल हैं और हमारी आत्मा सूक्ष्म है, अतः स्थूल वस्तु सूक्ष्म की सदैव साथी नहीं बन सकती ।

24. हमसे दूसरी विभिन्न शरीरी आत्माएँ भी शरीर को छोड़कर न जाने किधर-किधर चली जाती हैं । हम व्यर्थ ही उनके लिये तरसते और तड़फते हैं। अतः वे दूसरी आत्माएँ भी हमारी सदा ही सच्ची साथी नहीं हो सकती ।

25. सांसारिक विषय — वस्तुएँ हमारे शरीर से मेल खाती हुई भी आत्मा (हम) से मेल नहीं खाती, क्योंकि वे आत्मा की जाति और गुण धर्म वाली नहीं हैं । अतः वे सब हमारी सदैव की सच्ची साथी नहीं ।

26. संसार की विषय वस्तुएँ तीन कारणों (उपादान, निमित्त, साधारण) से उत्पन्न होने वाली कार्य हैं, जबकि हम (आत्मा) इन तीन कारणों वाले न होने से उत्पत्ति रहित अजर अमर हैं । अतः उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ हमारी सच्ची साथी नहीं ।

27. संसार की विषय वस्तुएँ में वैसे श्रेष्ठ उत्तम गुण नहीं हैं जैसे कि हम (आत्मा) में हैं । अतः वे हमारी सच्चे साथी नहीं हो सकती ।

यह कैसा विचित्र पदार्थ है !!!

1. जो निराकार, अदृश्य एवं परमसूक्ष्म होते हुए भी महान पुरुष है, बुद्धिमान है, दण्डाधिकारी है, हमारे अङ्ग-सङ्ग है, हममें ओतप्रोत है, हमें प्रतिपल देख सुन और जान रहा है ।
2. जो प्रेत्यक सृष्टि के आदि में बिना माता-पिता के बच्चे पैदा करता है, उनका पालन करता है, उन्हें पढ़ाता है ।
3. जो खरबों प्रकार के जीव जन्तु, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष बनाता है ।
4. जो खराबों प्रकार के बीज बनाता है उनके उगने के लिए भूमि तैयार करता है, वर्षा आदि का प्रबन्ध करता है ।
5. जो खरबों प्रकार के सौर-मण्डल बनाता है, उनको धारण करके रखता है- टिका कर रखता है ।
6. जो प्रतिक्षण खरबों प्रकार की क्रियाएं एक साथ करने की क्षमता रखता है ।
7. जो खरबों जन्मों में खरबों जीवात्माओं द्वारा किए कर्मों का हिसाब लगाकर तुरन्त नया शरीर दे देता है ।
8. जो अनन्त प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है ।
9. जो लाखों करोड़ों किलोमीटर व्यास के ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि बनाकर उनको ऐसे घुमा फिरा रहा है जैसे एक बालक गेंद को ।
10. जिसका प्रत्येक कार्य बड़ा उद्देश्यपूर्ण, बहुआयामी और अत्यन्त बुद्धिपूर्वक है, दिन-रात, समुद्र-पर्वत, बादल-वर्षा, सृष्टि-

उत्पत्ति-प्रलय, बीज-पेड़-बीज आदि के चक्कर को जीवों के कल्याण व सुख के उद्देश्य से चलाता है ।

11. जो दिव्य रस से, आनन्द से, प्रेम से परिपूर्ण है और पात्रों को आनन्द प्रदान कर निहाल कर देता है ।

12. जो सब प्रकार के दुःखों से छुड़ाकर एक परान्त काल अर्थात् 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष तक पूर्ण आनन्द में रख सकता है ।

13. जो दिन रात सुखों की वर्षा कर रहा है । उसके द्वारा बनाए अद्‌भुत अङ्ग-प्रत्यङ्ग, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन बुद्धि चित्त अहंकार, प्राण, अन्न, दूध, फल, हवा, पानी, रोशनी, खुराक आदि दिन रात कितना सुख बरसा रहे हैं ।

14. जो सच्चा साथी है, एक क्षणं भी साथ नहीं छोड़ता, अच्छा कार्य करने पर उत्साह व प्रसन्नता प्रदान करता है, बुरा कार्य करने या सोचने पर भय, शंका व लज्जा उत्पन्न करता है।

15. जो सोते जागते,फेफड़े, दिल, जिगर, गुर्दे, नस-नाड़ियों को चलता रखकर रक्षा करता है ।

16. जो अनन्त धैर्यवान है कितना ही उसे बुरा कहो, जबतक गृत्यु नहीं हो जाती कर्मफल देने की प्रतीक्षा करता है, विचलित नहीं होता ।

17. जो भोजन का रस, रक्त, मंज्जा, माँस, अस्थि, वीर्य व ओज बना देता है । जिसने शरीर में ऐसे बहुमूल्य स्वचलित यन्त्र लगा रखे है जो ये पेचीदा कार्य सुगमता से लम्बे काल तक करते रहते हैं ।

18. तो खरबों प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए खरबों प्रकार की औषधियां, जड़ी बूटियां उत्पन्न करता है । सबका पारिवारिक, व्यक्तिगत डॉक्टर है, चिकित्सक है, हर रोग का विशेषज्ञ है, हर रोग के उपचार की विधि आयुर्वेद के माध्यम से उसी ने प्रकट की है ।

19. जो सर्वोत्तम एवं शाश्वत इंजिनियर, शिल्पकार, रचानकार, गुरु, आचार्य, राजा, न्यायाधीश, विधाता, स्वामी और सखा है ।

20. जो केवल अनुमान प्रमाण, शब्द प्रमाण और समाधि द्वारा ही दिखाई देता है अर्थात् अनुभव में आता है ।

21. जो सदैव युवा, नूतन, निराकार, सर्वव्यापक, अनन्त है, बिल्कुल स्थान नहीं घेरता, सब सूक्ष्म व स्थूल पदार्थों व जीवों में प्रवेश किया हुआ है और जिसका कोई ओर छोर नहीं, किनारा नहीं ।

22. जो इतना विशाल और महान् है कि अरबों-खरबों आकाश गंगाओं वाली यह सृष्टि उसके सामने ऐसे है जैसे वट वृक्ष पर एक पक्षी का घोसला (यह उपमा भी उसकी विशालता को दर्शाने के लिए हीन उपमा ही है ।)

23. जो खरबों प्रकार की सुगन्धि, मिट्टी चट्टानें, पर्वत, धातुएं रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ बनाता है ।

24. जो रात्रि में रात्रि बल्ब (चन्द्रमा) का प्रबन्ध करता है ।

25. जो कुशाग्र बुद्धि वाले ऋषि-मुनि, वैज्ञानिक, वैद्य आदि उत्पन्न कर लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति के साधनों का आविष्कार करवाता है ।

26. जो भिन्न-भिन्न प्रकार की ऋतुएं पशु-पक्षी, प्राणी, पेड़-पौधे, फल-फूल, विद्युत्, वर्षा आदि के द्वारा हमारी विविध प्रकार से सहायता करता है, सुखी करता है ।

27. जिसके अनन्त नाम हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त कार्य हैं ।

28. जिसने अपना निज मुख्य नाम ओ३म् बताया है जो अनेक गुणों का द्योतक है ।

29. जिसके जप से हमारा अपना और उसके दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार होता है और सब प्रकार के विघ्नों, दुःखों व क्लेशों का नाश होता है ।

30. जो सब प्रकार के क्लेशों, सकाम कर्मों, कर्मफल, कर्म संस्कार, रोगों भोगों से रहित है ।

31. जो सर्वज्ञ और गुरुओं का गुरु है ।

32. जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है ।

33. जो सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल है ।

34. जो सच्चिनांदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वन्तर्यामी, अजर-अमर अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता, सृष्टिधर्ता, सृष्टिहर्ता और मोक्ष दाता है ।

35. जो अविद्या रूपी अन्धकार से रहित, कामनाओं से रहित जरा रहित, नाश रहित, न्यूनताओं से रहित, रंग रुप रहित, नस-नाड़ी रहित, पाप रहित, जन्म रहित, मरण रहित, अन्त रहित,
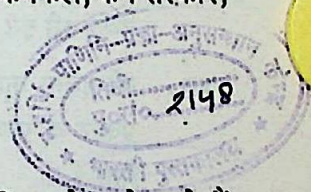
विकार रहित, आदि रहित, उपमा रहित, छिद्र रहित, बन्धन रहित, राग द्वेष रहित, पक्षपात रहित, आलस्य-प्रमाद-स्वपन-निद्रा रहित, क्लेश रहित, दुःख रहित, मिश्रण रहित इन्द्रियों रहित, गमन रहित, दूरी रहित है ।

36. जो सर्वश्रेष्ठ कवि, मनीषी, प्राणाधार, प्राणों का प्राण और सब का सहारा है ।

37. जो इष्ट फल का देने वाला, प्रेरक, पालक व पावक है ।

38. जो आयु, प्राण, सन्तान, पशु,धन, विद्या एवं ब्रह्मज्ञान विज्ञान व मोक्ष का देने वाला है ।

39. जो तेजस्वी, वीर्यवान्, ओजस्वी, तपस्वी व धैर्यवान है और हममें भी इन गुणों का धारण कराने वाला है ।

40. जो इतना कुशल कारीगर है कि ब्रह्माण्ड में खरबों-खरबों प्रकार के प्राणी हैं परन्तु किसी की शक्ल-सूरत मिलने नहीं देता ।

41. जो स्मरण शक्ति आदि के लिए सुपर कम्प्यूपटर से कहीं अधिक सक्षम मस्तिष्क बनाकर हमें देता है और उसे बिना विद्युत् के कई वर्ष चलाता है ।

42. जिसमें सृष्टियां उत्पन्न होती है और विलीन होती रहती हैं ।

43. जो प्रकृति, सृष्टि, जीवात्माओं, भूत, वर्तमान, भविष्य का ज्ञाता और अधिष्ठाता है ।

44. जिसकी एक ही कामना है-जीवों का कल्याण ।

45. जो खम्भे की तरह खड़ा है, न हिलता है न डुलता है, न चलता फिरता है। संकल्प मात्र से सब कार्य करता है ।

46. जो योग की भूमियों में, देवासुर संग्रामों में सहायता देता व विजय कराने हारा है ।

47. जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद की समस्त ऋचाओं की रचना की है व जीवों के कल्याणार्थ उनका अर्थ सहित ज्ञान दिया है ।

48. जो कुछ नहीं खाता पीता परन्तु हमारे खाने पीने के लिए नाना प्रकार के अन्न दूध फल मेवे आदि बनाता है ।

49. जो सब को मित्र व पुत्र की दृष्टि से देखता है ।

50. जिसकी अपनी बोली देव संस्कृत है परन्तु सब प्रकार की बोलियों व भाषाओं को समझता है ।

आत्मा की आत्मकथा

- मैं अणुरूप एक सत्तात्मक चेतन पदार्थ हूँ। मुझ में सच्चिदानन्द ईश्वर ओतप्रोत हो रहा है।
- मैं अनादि, अजर, अमर, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान हूँ, आग मुझे जला नहीं सकती, पानी मुझे गला नहीं सकता, हवा मुझे सुखा नहीं सकती, शस्त्र मुझे काट नहीं सकते।
- मैं जन्म, मरण एवं मोक्ष के चक्कर में घूमता रहता हूँ।
- मैं क्लेशों, अच्छे-बुरे कर्मों, कर्म फल और संस्कारों से युक्त होता रहता हूँ।
- मैं शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों, सत्वरज-तम, प्रकृति, महतत्व, अहंकार, सूक्ष्म-भूतों एवं स्थूल भूतों से पृथक् हूँ। प्रकृति को छोड़ इन सब पदार्थों का नाश-बनना-बिगड़ना होता रहता है परन्तु मेरा नाश नहीं होता।
- मैं इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान स्वाभाविक गुणों वाला हूँ। प्रकृति के सम्पर्क में आकर सुख-दुख भोगता हूँ, ईश्वर के सम्पर्क में आकर आनन्द को भोगता हूँ।
- मैं शुद्ध, बुद्ध, मुक्त हूँ। प्रकृति से बने पदार्थों में आसक्त होकर बँध जाता हूँ। बन्धन में आता रहता हूँ।
- रजोगुण से दुःख है। मै इस दुःख गुण से रहित हूँ।
- तमोगुण से आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार गुण उत्पन्न होते हैं। मैं स्वंय इनसे रहित हूँ।
- मैं रजोगुण-तमोगुण से प्रभावित होता रहता हूँ जिसका कारण मेरी ही अविद्या है।

- मैं अपरिणामी हूँ, मैं गुणातीत हो सकता हूँ ।
- मैं शरीर, मन , इन्द्रियों का संचालक हूँ । उनका गौण रूप में स्वामी हूँ ।
- मैं, धन, सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि नहीं हूँ । ये सभी सम्बन्ध मेरे ही कर्मों के कारण बनते बिगड़ते रहते हैं । इनकी हानि होने से मेरी कोई हानि नहीं होती ।

- मैं आनन्द से रहित हूँ, मुझे आनन्द की ही तलाश है ।
- मैं ईश्वर का पुत्र हूँ, ईश्वर मेरा पिता, माता, बन्धु, सखा, गुरु, आचार्य, राजा और न्यायधीश है ।
- मैं स्थान नहीं घेरता, मेरा पिता ईश्वर भी स्थान नहीं घेरता। मेरे जैसी अनेक आत्माएँ हैं, वे भी चेतन होने के कारण स्थान नहीं घेरती ।
- मैं इस शरीर रूपी-अस्थि पंजर रूपी पिंजरे में कैद हूँ । मेरी माता ईश्वर ने उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करने के कारण मुझे इस शरीर में मेरे ही कल्याण के लिए बाँध रखा है । मैं इस कैद को तोड़कर (आत्महत्या) कर भाग जाऊँ तो मेरी शाश्वत माँ मुझे तुरन्त पकड़ कर इससे भी भयंकर कैद में डाल देती है । जीव जन्तु पशु-पक्षी के शरीरों में डाल देती है ।
- मेरे बन्धन का, दुःख का मुख्य कारण अविद्या है । मैं प्रकृति से बने पदार्थों को नित्य, पवित्र, चेतन और सुख रूप मानकर उनको पाने के लिए दिन रात सोचता रहता हूँ, उनको पाने की चेष्टा में लगा रहता हूँ ।

- जन्म लेना ही मेरे दुःख का कारण है और जन्म का कारण मेरे कुसंस्कार, कुकर्म, राग, द्वेष, मोह व अविद्या है ।
- मुझमें 24 प्रकार की स्वाभाविक शक्तियाँ हैं–बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चत, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, गन्ध ग्रहण और ज्ञान। इन्हीं से मुक्ति में मैं सब कार्य एवं आनन्द की प्राप्ति करता हूँ ।
- मैं योगाभ्यास, ईश्वर भक्ति, ईश्वर प्रेम, ईश्वर आज्ञापालन से मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ । मोक्ष में मैं 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष तक रहता हूँ । पुनः जन्म लेकर कार्य करने लगता हूँ । मुक्त अवस्था में मैं अन्य मुक्त आत्माओं से वार्तालाप कर सकता हूँ, कहीं भी आ जा सकता हूँ ।
- मैं प्रलयावस्था में गाढ़ निद्रा/सुषुप्ति अवस्था में रहता हूँ ।
- मैं इस शरीर में दो पसलियों के बीच हृदय देश में रहता हूँ । वहीं से मैं सब शरीर के अंगों को चलाता हूँ ।
- मेरे रहते इस शरीर में कोई दूसरी आत्मा नहीं आ सकती ।
- मैं रंग, रूप, आकार, प्रकार, भार व लिंग रहित हूँ ।
- शरीर रूपी पिंजरा बेकार होने पर या नष्ट होने पर मैं इस शरीर में से कहीं से भी निकल जाता हूँ । मैं इतना सूक्ष्म हूँ कि शरीर में से निकलने के लिए मुझे किसी छिद्र की आवश्यकता नहीं होती ।
- मैं ब्रह्म या ब्रह्मा का अंश नहीं हूँ, परन्तु समाधि एवं मोक्षावस्था में मैं ब्रह्ममय अर्थात् आनन्दमय हो जाता हूँ और कह उठता हूँ कि मैं ही ब्रह्म हूँ ।

- मैं कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु फल भोगने में परतन्त्र हूँ ।
- मैं भूतप्रेत आदि बनकर किसी को तंग नहीं करता । मैं तो एक शरीर छोड़ने के बाद ईश्वर की व्यवस्था में तुरन्त दूसरा जन्म लेकर नई माँ की गोद में चला जाता हूँ ।
- मैं जीवात्मा, आत्मा, रूह, Soul,जीव, वायु, इन्द्र आदि नामों से भी जाना जाता हूँ ।
- मैं कुछ खाता-पिता नहीं हूँ । सब खाया-पिया शरीर को ही लगता है ।
- मैं इन्द्रियों से नहीं दिखता । केवल गुणों के आधार पर अनुभव में आता हूँ ।
- मैं एक पदार्थ हूँ जिसके आश्रय इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, निमेष, उन्मेश, गमन, मनन, इन्द्रिय, अन्तर्विकार आदि गुण रहते हैं ।
- मैं निराकार हूँ, शरीर में परिच्छिन हूँ अर्थात् एक स्थान में रहता हूँ । अपने पिता ईश्वर की तरह विभु अर्थात् सर्वव्यापक नहीं हूँ ।
- मैं सत्व रज तम प्रकृति अर्थात् परमाणुओं से भी बहुत सूक्ष्म हूँ । ईश्वर मुझसे भी अधिक सूक्ष्म है ।
- मुझे अपने पूर्व जन्मों की याद नहीं रहती । कभी कभार अपवाद रूप में ऐसा हो जाता है तब मेरा जीना दूभर हो जाता है । पूर्व जन्म की स्मृतियाँ बहुत कष्ट देने लगती है । यह ईश्वर की मेरे ऊपर बड़ी कृपा है कि मुझे पूर्व जन्मों की याद नहीं रहती ।

- मैं अनादि हूँ, स्वयम्भू हूँ, शाश्वत (Eternal) हूँ । मेरी उत्पत्ति के तीन मूल कारण नहीं है । मुझे किसी ने नहीं बनाया । ईश्वर भी मुझे नहीं बना सकता ।
- मैं साधक हूँ । मुझे अपने साध्य (ईश्वर) को प्राप्त करना है । मेरी सहायता के लिए ईश्वर ने मेरे लिए ही पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नाना प्रकार के अन्न दूध फल फूल बनाए हैं और वेदों को ज्ञान-विज्ञान दिया है । ये सब मेरे साध्य प्राप्ति में बहुमूल्य साधन हैं ।
- मुझमें धारणा ध्यान से मेरा साक्षात्कार हो सकता हैं ।
- मेरे स्वरूप को जानने से विवेक-वैराग्य उत्पन्न होता है और मन इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है ।
- मैं अज्ञानतावश, अल्पज्ञतावश, संस्कार वश अपने पिता ईश्वर की आज्ञाओ का उल्लघंन कर बैठता हूँ और दुःख उठाता हूँ ।
- मेरा सबसे योग्य सखा मेरा पिता ईश्वर ही है वह हर पल मेरा मार्गदर्शन करता रहता है ।
- प्रत्येक सृष्टि के आदि में मैं बिना लौकिक माता-पिता के जन्म लेता हूँ । ईश्वर स्वयं मेरे शरीर की रचना करता है और उस समय शरीर की युवावस्था तक पृथिवी माता के गर्भ द्वारा मेरा पोषण करता है, सब आवश्यक ज्ञान-विज्ञान देता है, मुझे पढ़ाता है अथवा ऋषियों द्वारा पढ़वाता है ।
- हमारी संख्या निश्चित है । ईश्वर ही उस संख्या को जानता है । उस संख्या को जानना मेरे वश की बात नहीं । हम सब अनादि, चेतन, सूक्ष्म होते हुए भी पृथक्-पृथक् हैं । ईश्वर ही हमें पहचानता है ।
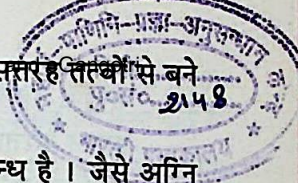
- जब तक प्रलय या मोक्ष नहीं हो जाता मैं सत्तरह तत्वों से बने सूक्ष्म शरीर से सयुंक्त रहता हूँ ।
- मेरा और ईश्वर का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है । जैसे अग्नि लोहे के गोले में प्रवेश कर जाती है और उसकी सत्ता भी बनी रहती है । वैसे ईश्वर रूपी अग्नि/तेज मुझसे प्रवेश किए रहता हैं और मेरी सत्ता भी ज्यूँ की त्यों बनी रहती है । भ्रम के कारण कुछ मुझे औरे मेरे पिता को एक ही मान लेते हैं । इसके अतिरिक्त मेरा और ईश्वर का पिता-पुत्र, माता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, साधक-साध्य, उपास्य-उपासक सम्बन्ध भी है ।
- जब मैं शरीर धारण करता हूँ तो उस शरीर के कारण, सूक्ष्म, स्थूल, तीन प्रकार, जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय चार अवस्थाएँ, अन्नमय-प्राणमय-मनोमय, विज्ञानमय- आनन्दमय पाँच कोष होते हैं । परन्तु मैं इन सभी प्रकारों-अवस्थाओं और कोषों से सर्वथा पृथक् ही रहता हूँ ।
- इन्द्रियों के भोग ही मेरे दुःख का कारण हैं, आवागमन का कारण हैं इस संसार का कारण है ।
- मेरे कारण ही प्रत्येक शरीर में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है । मेरे शरीर छोड़ते ही शरीर में से दुर्गन्ध आने लगती है ।
- मैं इस शरीर रूपी रथ का स्वामी हूँ, चालक हूँ, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं ।
- मेरे कर्मानुसार मुझे जैसा भी शरीर ईश्वर दे देता है, मुझे वह प्राणों से भी प्यारा लगने लगता है उसी में प्रसन्न रहता हूँ,

सन्तुष्ट रहता हूँ। उसकी रक्षा करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता हूँ। सर्वथा भूल जाता हूँ कि यह शरीर मेरे ही कर्मों का फल है।

- केश के अग्रभाग से सौ टुकड़े किए जाएँ और उनमें से एक के फिर सौ टुकड़े किए जायें अर्थात् केश के सूक्ष्म अग्रभाग के दस हजारवें भाग से भी अधिक सूक्ष्म मैं हूँ, परन्तु मेरा सामर्थ्य प्रबल है।
- मैं अद्वैत हूँ, अभौतिक हूँ। किन्हीं दो या दो से अधिक पदार्थों के संयोग से मेरा निर्माण नहीं हुआ।
- मेरे द्वारा किये हुए दान का या कर्म का कभी नाश नहीं होता।
- मैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द तथा अन्य गुणों को अनुभव करता हूँ।
- मेरा ज्ञान हर्षित करने वाले कारणों में सबसे श्रेष्ठ है।
- मैं अपने पिता परमेश्वर की सहायता के बिना अर्थात् उनके द्वारा दिए साधनों के बिना कुछ नहीं कर सकता।
- मैं काल की दृष्टि से अनंत हूँ अर्थात् मेरा कभी अन्त नहीं होता। मेरा पिता ईश्वर काल व सीमा दोनों की दृष्टि सं अनन्त है।

विद्वान्, वेद, विद्युत् आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और (साध्य) कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं।

☛ जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम कर्म्म करते हैं वे ब्रह्मा सब वेदों का वेत्ता विश्वसृज् सबसृष्टिक्रम विद्या को जानकर विविध विमानादि यानों को बनानेहारे, धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

☛ जो इन्द्रिय के वश होकर विषयी, धर्म को छोड़कर अधर्म करनेहारे अविद्वान् हैं वे मनुष्यों में नीच जन्म बुरे-बुरे दुःखरूप जन्म को पाते हैं।

☛ इसी प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त वेग से जिस-जिस प्रकार का कर्म जीव करता है उस-उसको उसी-उसी प्रकार फल प्राप्त होता है। जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फंसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें। क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।। १ ।। तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।। २ ।।

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं— मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना। जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इत्यादि साधन मुक्ति के लिये करे। और—

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।।

यह सांख्य का सूत्र है—जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर सम्बन्धी पीड़ा आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है। विविध दुःख को छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।

(सत्यार्थ प्रकाश)
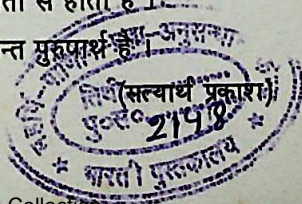
सम्पादक / लेखक का एक संक्षिप्त परिचय

वर्तमान नाम- डॉ. मुमुक्षु आर्य वानप्रस्थ

पूर्व नाम- डॉ. अशोक कुमार बन्सल (डॉ. ए. बी. आर्य)

पिता का नाम- स्वर्गीय श्री लक्ष्मण दास बन्सल

माता का नाम- श्रीमती विद्यावती

गुरू का नाम- महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं योगनिष्ठ स्वामी सत्यपति परिव्राजक।

जन्म स्थान- रामपुरा, पंजाब जन्म तिथि – 13 अप्रैल 1948

शिक्षा- आर्य हाई स्कूल, रामपुरा पंजाब, एस. एम. हिन्दू हाई स्कूल सोनीपत, एस. डी. कॉलेज बरनाला, डी. ए. वी. कॉलिज, जालंधर, मैडीकल कॉलिज अमृतसर, पंजाब विश्वविद्यालय, गुरुनानदेव विश्वविद्यालय, आर्य गुरुकुल होशंगाबाद, दर्शनयोग महाविद्यालय रोजड़, गुजरात।

योग्यता- एम.बी.बी.एस., एम.डी., एम.आर.सी.पी., पी.सी.एम.एस.। वेद, उपनिषद, दर्शन सत्यार्थप्रकाश आदि आर्य ग्रन्थों का स्वाध्याय। वैदिक प्रवक्ता व प्रचारक के रूप में स्कूल, कॉलिजों, समाजों व सभाओं आदि में प्रवचन एवं निःशुल्क साहित्य वितरण। हृदय रोग विशेषज्ञ के रूप में निःशुल्क चिकित्सा-परामर्श।

कार्यभार- अध्यक्ष – वेद संस्थान नोएडा, पूर्वाध्यक्ष – आर्य समाज नोएडा, आर्ष गुरुकुल नोएडा, वानप्रस्थ आश्रम नोएडा, आर्य युवक सभा अमृतसर, उपाध्यक्ष – आनन्दपथ जनसेवा ट्रस्ट मेरठ, ऋषि सिद्धान्त रक्षिणी सभा दिल्ली, मन्त्री – आर्य समाज अमृतसर, रजिस्ट्रार – सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली। अखिल भारतीय श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा दिल्ली, सम्पादक- ऋषि सिद्धान्त मासिक, क्रान्त्युदय पत्रिका, संरक्षक आर्य सेवक मासिक नागपुर, संयोजक सार्वदेशिक विद्या आर्य सभा, दिल्ली। पजांब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश के कई सरकारी व गैर सरकारी अस्पतालों में मैडीकल ऑफिसर व विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा कार्य।

संस्थापक- आर्य गुरुकुल नोएडा, वानप्रस्थाश्रम नोएडा, गौशाला, पुस्तकालय, महर्षि दयानन्द स्मृति पुरस्कार, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी स्मृति पुरस्कार, पं. रामप्रसाद बिस्मिल स्मृति पुरस्कार, चन्द्रशेखर आजाद स्मृति पुरस्कार, पं. राम प्रसाद बिस्मिल सभागृह, साधना केन्द्र, वेद संस्थान नोएडा।

वानप्रस्थ दीक्षा- 28 फरवरी 1999, स्थान – वानप्रस्थाश्रम नोएडा, स्वामी सत्यपति परिव्राजक जी द्वारा दीक्षित, उन्हीं के सान्निध्य में रह कर योग प्रशिक्षण, सघन साधना एवं शेष जीवन साधना, स्वाध्याय व सेवा का संकल्प।

लेखन/सम्पादन- गागर में सागर (भूलोक की कहानियाँ), विद्या-अविद्या, मुक्ति, वैदिक प्रश्नोत्तरी, प्रकाश की ओर। पत्र-पत्रिकाओं में वेदादि शास्त्रों पर आधारित लेख।

सेवा प्रकल्प- योग शिविर, चिकित्सा शिविर, रक्त दान शिविर, निःशुल्क साहित्य वितरण, वैदिक प्रवचन, संस्कार, अनाथों, विधवाओं एवं असहाय रोगियों आदि को आर्थिक सहयोग, गुरुकुल विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिताओं का आयोजन, यज्ञ, योग एवं वेद का प्रचार-प्रसार।